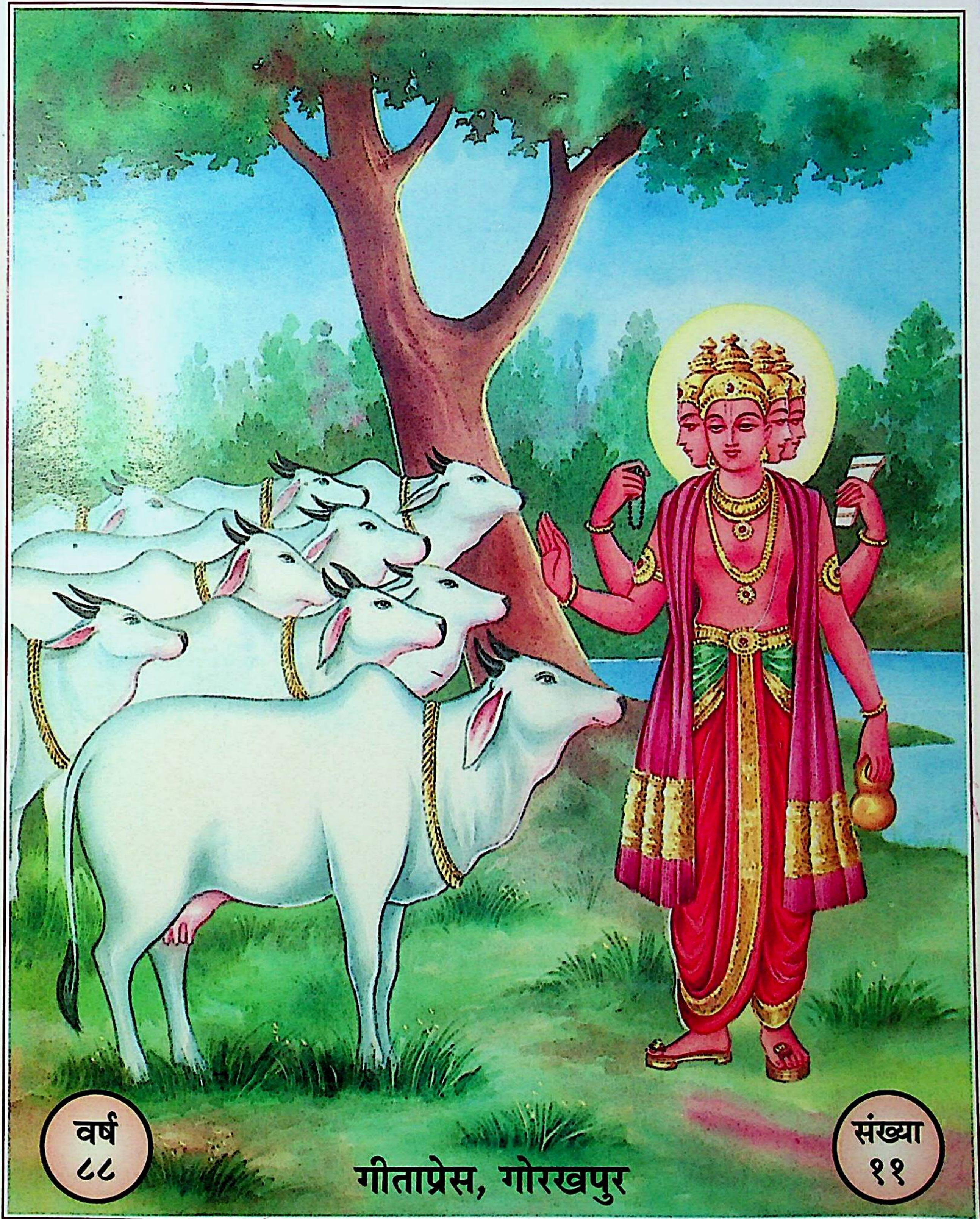
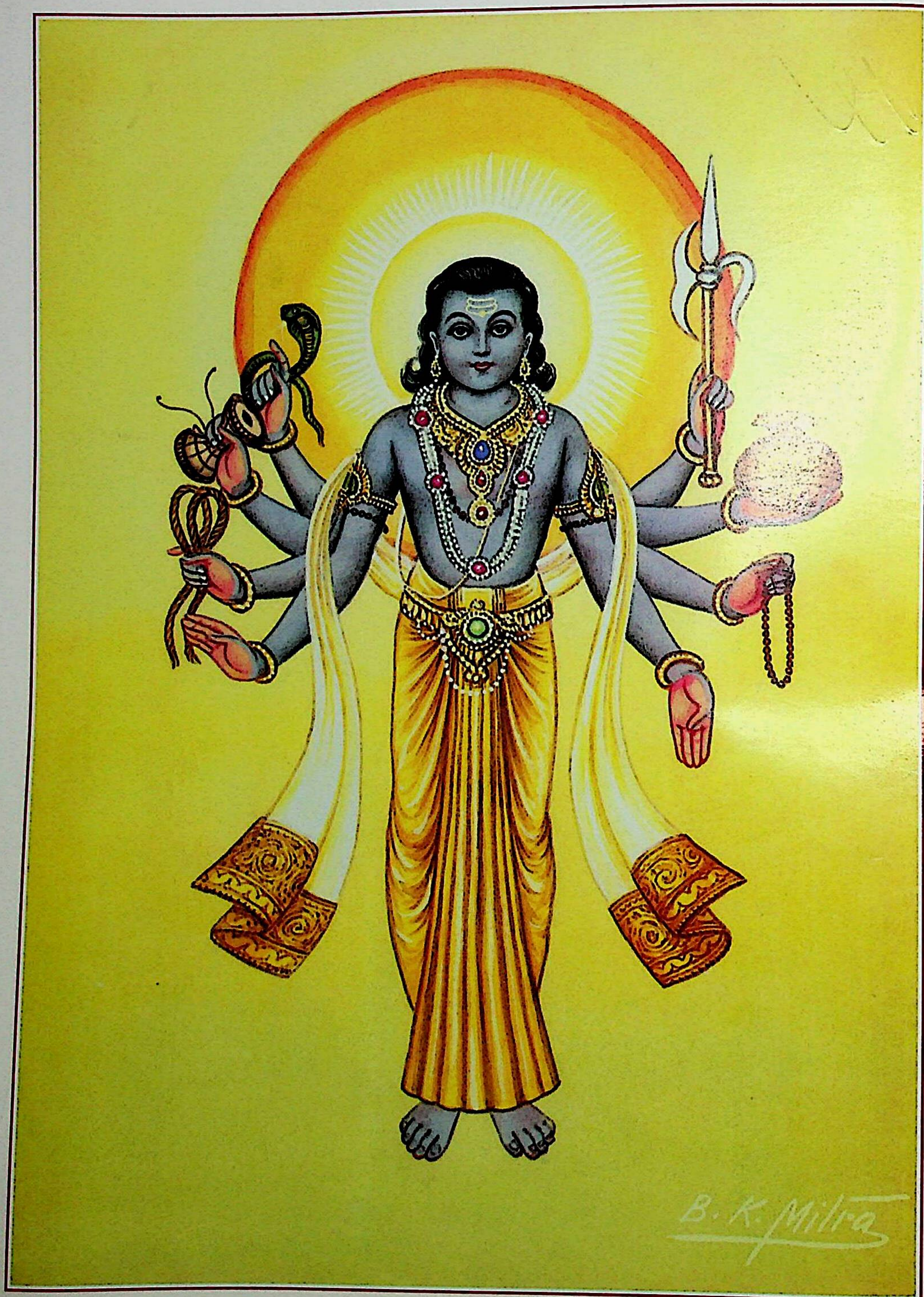
ॐ श्रीपरमात्मने नमः

कल्याण

मूल्य ८ रुपये

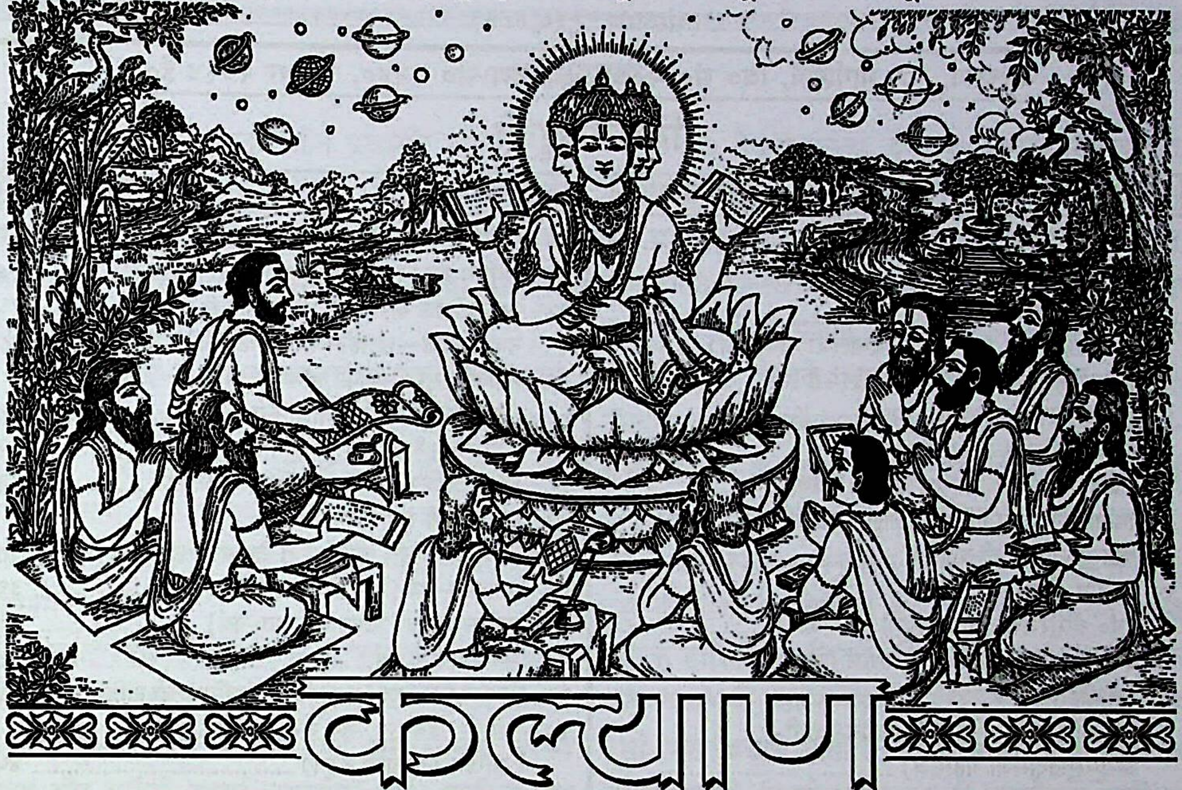


ब्रह्माजीद्वारा गायोंको वरदान



श्रीबटुक भैरव

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥



कल्याण

तदेव लग्नं सुदिनं तदेव ताराबलं चन्द्रबलं तदेव।
विद्याबलं देवबलं तदेव लक्ष्मीपते तेऽङ्घ्रियुगं स्मरामि॥

वर्ष ८८ | गोरखपुर, सौर मार्गशीर्ष, वि० सं० २०७१, श्रीकृष्ण-सं० ५२४०, नवम्बर २०१४ ई० | संख्या ११

पूर्ण संख्या १०५६

श्रीबटुक भैरवका ध्यान-स्वरूप

कालमेघ-श्यामल-तनु शोभित,
मुद्रा वरद-अभय सुन्दर।
सुधा-कलश, पाशांकुश, फणि,
माला, डमरूसे संयुत कर॥
पीत वस्त्र, रत्नोज्ज्वल भूषण,
स्वर्णरत्न करधनि मनहर।
भाल त्रिपुण्ड्र सुशोभित, भैरव-
बटुक सदा सेवक-हितकर॥

[पद-रत्नाकर]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,१५,०००)

कल्याण, सौर मार्गशीर्ष, वि० सं० २०७१, श्रीकृष्ण-सं० ५२४०, नवम्बर २०१४ ई०

विषय-सूची

चित्र-सूची

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क
अजिल्द ₹ २००
सजिल्द ₹ २२०

पंचवर्षीय शुल्क
अजिल्द ₹ १०००
सजिल्द ₹ ११००

विदेशमें Air Mail सजिल्द शुल्क — वार्षिक US$ 45 (₹2700), पंचवर्षीय US$ 225 (₹13500) — Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : www.gitapress.org | e-mail : kalyan@gitapress.org | ✆ (0551) 2334721

सदस्यता-शुल्क—व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।
Online सदस्यता-शुल्क-भुगतानहेतु-www.gitapress.org पर Online Magazine Subscription option को click करें।

कल्याण

याद रखो—जगत्‌में तीन प्रकारके रस हैं—१. प्रमाद-रस, २. विषय-रस और ३. भगवद्-रस। इनके अनेक अवान्तर भेद हैं। 'पामर' प्रमाद-रसका सेवन करता है, 'विषयी' विषय-रसका और सच्चा 'साधक' या 'भक्त' भगवद्-रसका।

याद रखो—अवश्य करनेयोग्य कार्यको न करना और कभी न करनेयोग्यको करना—'प्रमाद' कहलाता है। इस प्रमादसे जिस आनन्दकी प्राप्ति होती है, उसका नाम 'प्रमाद-रस' है। जैसे शास्त्रीय शुभ कर्मोंके त्यागमें और परधन-परस्त्री-परनिन्दा आदिके सेवनमें।

याद रखो—प्रमाद एक भीषण नशा है; प्रमादमें फँसे हुए मनुष्यकी बुद्धि सब कुछ विपरीत ही देखती है। वह पुण्यको पाप, पापको पुण्य; भलेको बुरा, बुरेको भला और धर्मको अधर्म, अधर्मको धर्म। इसलिये वह सहज ही बड़े भाव और चावसे नये-नये पाप करता है और ऐसा करके मन-ही-मन गौरव और मानका अनुभव करता है। इसीलिये प्रमादको 'मोहमयी मदिरा' कहा गया है। इस प्रमादका तुरंत त्याग कर देनेमें ही कल्याण है।

याद रखो—स्त्री, स्वामी, पुत्र, धन, शरीर, मकान, यश, मान, बड़ाई आदि सांसारिक, ऐसे विषयोंमें, जो पापयुक्त नहीं हैं और शास्त्रविहित हैं—अत्यन्त आसक्त होना और दिन-रात उन्हींका सेवन करते हुए, उसीमें आनन्दका अनुभव करना—'विषय-रस' है। यह पाप नहीं है, परंतु इसमें भगवान्‌की विस्मृति है—मानवशरीरके चरम लक्ष्यकी ओरसे अवहेलना है और इसलिये इसके 'प्रमाद-रसमें' परिणत हो जानेकी सम्भावना है। अतएव परमार्थ-साधकके लिये यह भी त्याग करनेयोग्य ही है।

याद रखो—भगवान्‌का सतत स्मरण करते हुए ही मानवधर्मका पालन करते हुए अपने-अपने वर्णाश्रमके अनुसार जीवनके छोटे-बड़े सभी शास्त्रविहित कर्म—सोना-उठना, खाना-पीना, धन कमाना, व्यय करना, व्यापार या नौकरी करना, देश या धर्मकी सेवा करना, भिक्षाटन, अरण्य-सेवन, सन्तानोत्पादन, सन्तानसंरक्षण, पूर्ण ब्रह्मचर्य, भक्ति, तप, निष्काम कर्मयोग, योगसाधन, ज्ञान आदि समस्त साधन अथवा आवश्यक होनेपर घोर रजोगुणी कर्म भी ममता, आसक्ति और फल-कामनाका त्याग करके केवल भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये—उनकी पूजाके रूपमें करना और इस प्रकार भगवत्स्मरण-युक्त स्वकर्मके द्वारा भगवान्‌की पूजा करनेमें ही अतुलनीय आनन्दका अनुभव करना 'भगवद्-रस' है।

याद रखो—मनुष्यके लिये एकमात्र यह भगवद्-रस ही सेवन करनेयोग्य है। जो लोग भगवद्-रसके रसिक होते हैं, वे जितना-जितना ही इस दिव्य रसका पान करते हैं, उतनी-उतनी ही उनकी अतृप्ति और रसपिपासा बढ़ती जाती है, पर साथ ही उनके लिये इस रसके सामने किसी अन्य रसकी उपादेयता नहीं रह जाती। विषय-रस सर्वथा नीरस हो जाता है और प्रमाद-रसकी तो कल्पनाके लिये भी स्थान नहीं रहता! इसीलिये संसारका दुःख-दावानल उनके लिये सदाको शान्त हो जाता है और वे भगवद्-रसके अत्यन्त प्यासे होनेपर भी परम सुखी हो जाते हैं।

याद रखो—आपातरमणीय विषय-रस भी परिणाममें विषका ही काम करता है, वह भी बार-बार मृत्युके चक्रमें ही डालता है; परंतु प्रमाद-रस तो प्रत्यक्ष महाविष है, लेकिन इस समय अधिकांश लोग इस प्रमादमें ही पड़े हैं! इसीलिये संसारमें इतने दुःख, संताप और क्लेश उत्पन्न हो गये हैं और उत्तरोत्तर बढ़ रहे हैं!

याद रखो—जबतक जीवनमें प्रमाद छाया है, तबतक सच्ची शान्ति-सुखकी आशा करना वैसा ही है, जैसा भीषण अग्निके पास बैठकर ठण्डक पानेकी दुराशा करना!

याद रखो—सच्चा अमिट और पूर्ण आनन्द—नित्य निर्मल और मधुर रस तो भगवान्‌में ही है; क्योंकि यथार्थ रसरूप भगवान् ही हैं—'रसो वै सः।'

'शिव'

श्रद्धा, विश्वास और प्रेम

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

[गताङ्क १० पृ०-सं० ८ से आगे]

जो कुछ भी ईश्वरका विधान है, उसमें हित ही भरा है। कहीं भी अहित दिखता है तो यह अपनी समझकी कमी है। अणु-अणुमें सब समय, सब देश और सब वस्तुमें अपना हित ही देखे, यह देखना ही सर्वत्र उसकी दयाको देखना है। विश्वासपूर्वक मान ले, बस, फिर काम समाप्त। उसके आनन्दका ठिकाना ही नहीं है। प्रत्यक्ष शान्ति और आनन्द है। इन बातोंके पढ़ने-सुननेमात्रसे ही महान् शान्ति और आनन्द प्राप्त होते हैं तो फिर बार-बार मनन करनेसे बड़ी भारी शान्ति और आनन्दका अनुभव क्यों नहीं होगा?

ईश्वरकी दया सर्वत्र है। सर्वत्र उसके प्रेमकी छटा छा रही है। फिर हम क्यों भय करें? वह प्रेमका महान् समुद्र है, उसमें हम डूबे हुए हैं—प्रेम-जलसे भींगे हुए हैं—मग्न हो रहे हैं। यह भाव जब दृढ़ हो जायगा, तब शान्ति और आनन्दकी बाढ़ प्रत्यक्ष दिखने लगेगी। फिर प्रेम आनन्दके रूपमें परिणत हो जायगा, वही परमात्माका स्वरूप है। परमात्मा आनन्दमय है। परमात्मा प्रेममय है। वह प्रेम ही प्रत्यक्ष प्रकट होकर दर्शन देता है। इस समय वह प्रेम अदृश्य है। जब प्रेम हो जाता है, तब भगवान् प्रत्यक्ष मूर्तिमान् होकर प्रकट हो जाते हैं। भगवान् श्रीराम और श्रीकृष्णका स्वरूप प्रेमका ही पुंज है। प्रेमके सिवा दूसरी वस्तु नहीं है। प्रेम ही आनन्द है और आनन्द ही प्रेम है। एक ही वस्तु है। भगवान् सगुण-साकारकी उपासना करनेवालोंके लिये प्रेममय बन जाते हैं और निर्गुण-निराकारकी उपासना करनेवालोंके लिये आनन्दमय।

संसारमें भी यह बात है कि जिससे जितना प्रेम बढ़ेगा, उससे उतना ही अधिक आनन्द होगा। यही बात इस विषयमें है। वे सच्चिदानन्दघन परमात्मा ही भक्तोंके प्रेमानन्द हैं और वे ही पूर्णब्रह्म परमात्मा मूर्तिमान् होकर प्रकट होते हैं।

तुलसीदासजी कहते हैं—

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥

हरि सर्वत्र परिपूर्ण हैं। वे प्रेममय हैं। वे प्रेमसे ही प्रकट होते हैं; क्योंकि वे स्वयं प्रेममय हैं।

यदि कहो कि बात तो सही है, पर हमलोगोंमें प्रेम नहीं है तो यह तो आपकी ही मान्यता है न? ऐसा कोई स्थान नहीं, जहाँ प्रेम न हो। प्रेमियोंका प्रेम और ज्ञानियोंका आनन्द सर्वत्र है। वेदान्तमें अस्ति, भाति, प्रिय कहा है। समझना चाहिये—प्रिय क्या वस्तु है? प्रिय और प्रेममें कोई अन्तर नहीं है। संसारमें कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं है, जिसमें आनन्द व्याप्त न हो। प्रेम उसका स्वरूप है। वह सर्वत्र है।

भगवान्ने वाल्मीकिमुनिसे रहनेका स्थान पूछा। तब उन्होंने कहा—भगवन्! बताइये, आप कहाँ नहीं हैं? वह प्रेममय परमात्मा बाहर-भीतर सर्वत्र परिपूर्ण है।

हममें प्रेम नहीं है, भजन-साधनकी कमीके कारण हमें भगवान् नहीं मिलते—यह हमारी मान्यता नीतिके अनुसार ठीक है। ऐसा मानकर हम भगवान्का भजन करें, सत्संग करें तो आगे जाकर हमारा कल्याण हो सकता है। नीति तो यही है, किंतु इसीसे विलम्ब हो रहा है। एक बात इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। हम कानून माननेवाले हैं, इसलिये भगवान्ने यह कानून बना दिया। पर हम यह मान लें कि कानूनकी बात तो वही है—अपनी दृष्टिसे तो वही बात है, पर प्रभु असम्भवको भी सम्भव करनेवाले हैं—वे अपने दासोंके दोषोंकी ओर देखते ही नहीं। वे बिना ही कारण दासोंपर दया और प्रेम करते हैं। उनका स्वभाव ही ऐसा है। उनके स्वभावपर यदि हम दृढ़ विश्वास कर लें तो फिर हम इस बातकी प्रतीक्षा करें कि एक क्षणका भी विलम्ब क्यों

हो रहा है? हम इस बातपर अड़ जायँ कि एक क्षणका विलम्ब क्यों होना चाहिये? बस, फिर विलम्ब हो नहीं सकता।

हमारा प्रेम, हमारी करनी तो विलम्ब ही करनेवाले हैं, किंतु इस अपनी मान्यताको छोड़कर प्रभुकी ओर ध्यान दें तो फिर विलम्ब नहीं होना चाहिये। हमारी धारणा बलवती होनी चाहिये। 'प्रभो! आप तो परम दयालु हैं, आप तो दासोंके दोषोंको देखते ही नहीं। आपकी दया तो प्रत्यक्ष है। आप परम प्रेमी हैं—आपका प्रेम तो बिना हेतु ही होता है। प्रभो! मैं जब ऐसा मानता था कि प्रभु न्यायकारी हैं, जब हम भजन करेंगे तो वे दर्शन देंगे, उस समयतक तो विलम्ब होना ठीक ही था, किंतु प्रभो! अब तो मैं यह मानता हूँ कि आप परम दयालु हैं, आपका दया करना ही एकमात्र स्वभाव है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि आप अब एक क्षण भी विलम्ब नहीं करेंगे।' ऐसा दृढ़ विश्वास रखें तो फिर उस कानूनसे जो विलम्ब हो रहा है, वह नहीं हो।

यह एक असम्भव-सी बात लगती है कि एक क्षणमें हमारा कल्याण हो जायगा। लोगोंकी यह धारणा हो रही है कि भगवान् न्यायकारी हैं—जब हम पात्र होंगे, तब वे दर्शन देंगे। यह बात युक्तिसंगत होते हुए भी भगवान्पर लागू नहीं हो सकती। भगवान्के लिये कुछ भी असम्भव नहीं है। असम्भव बात भी सम्भव हो सकती है, प्रभु ऐसे ही प्रभावशाली हैं, प्रभुका प्रभाव ही ऐसा है। वहाँ सारा असम्भव भी सम्भव है। यह बात हम समझ लें तो उसी समय कल्याण हो जाय। दया और प्रेम प्रभुके गुण हैं। असम्भवको भी सम्भव कर देना उनका प्रभाव है। प्रभुके गुणोंमें या प्रभावमें—किसी एकमें भी विश्वास हो जाय तो फिर बस, आप कैसे भी हों, आपको एक-एक मिनट प्रभुका विलम्ब सहन नहीं हो सकेगा। आप प्रतिक्षण व्याकुल होकर प्रतीक्षा करेंगे और प्रभु उसी क्षण प्रकट हो जायँगे। बस, केवल उनकी दयापर निर्भर होना चाहिये। फिर हम-सरीखोंकी तो बात क्या, हमसे भी गये-बीते लोगोंको एक क्षणमें दर्शन हो सकते हैं। हमें दर्शन होनेमें विलम्ब इसीलिये हो रहा है कि हम विश्वास नहीं करते।

प्रश्न—यह निश्चय कैसे हो?

उत्तर—भगवान् और भक्तोंकी दयासे यह निश्चय करानेके लिये ही ये सब बातें कही जाती हैं। जब हम यह मान लें कि भगवान् ही इस प्रकारकी श्रद्धा कराते हैं और इस तरहकी श्रद्धा करानेका वातावरण भी भगवान् ही उपस्थित करते हैं और उनकी अहैतुकी कृपासे ही यह सब सम्भव है तो फिर हम यह क्यों शंका करें कि प्रभु कृपा नहीं करते? प्रभु तो कृपा कर ही रहे हैं। तुम जो यह कह रहे हो कि प्रभु कृपा क्यों नहीं करते, यही तो विलम्बका कारण है।

ये जो भगवद्विषयकी बातें हैं—ये ही रहस्यकी बातें हैं। मनुष्य यदि प्रभुके गुण और प्रभावका रहस्य समझ जाय तो उसे धारण ही कर ले। समझकी बात है। समझ लेनेपर काम शेष नहीं रहता। 'संसारके जितने भी पदार्थ हैं, वे विष हैं।'—यह बात समझ लेनेवाला फिर इनका सेवन नहीं कर सकता। जब यह पता लग जाय कि लड्डुओंमें विष है तो भला कौन उन्हें खायेगा। खाता है तो समझना चाहिये कि वह समझा ही नहीं। किसी दरिद्रको पारस मिल जाय और फिर भी वह दरिद्र ही रहे तो समझना चाहिये कि उसने पारसको जाना ही नहीं।

भगवान्के प्रेम और दयाका तत्त्व समझना चाहिये। उनकी दया, प्रेम और प्रभाव अपार हैं। उनका तत्त्व नहीं जानते, तभी हम लाभ नहीं उठाते। भगवान्का प्रभाव भगवान्के लिये थोड़े ही है, वह तो हमलोगोंके लाभ उठानेके लिये ही है। ऐसा प्रभावशालीका प्रभाव संसारके उद्धारके लिये ही है। हृदयसे जो उनका ऐसा प्रभाव मानता है, वही लाभ उठा लेता है।

जगत्में एक दयावान् पुरुष है—उसके पास धन है। उसके धनसे वही लाभ उठाता है, जो उसे पैसेवाला

और दयालु मानता है। पैसेवाला मानकर भी यदि दयालु नहीं मानता तो लाभ नहीं उठा सकता और दयालु मानकर भी यदि उसे धनी नहीं मानता, तब भी लाभसे वंचित ही रहता है। प्रत्यक्ष बात है। इसी प्रकार महात्मासे लाभ वही उठा सकता है, जो उसे महात्मा समझता है। दूसरे भी उठाते हैं, पर थोड़ा। समझनेवाला तो पूरा और तुरंत लाभ उठा लेता है। दयालु धनीको जो दयालु नहीं मानता, वह भी लाभ तो उठा सकता है, किंतु थोड़ा। इसी प्रकार भगवान्‌को दयालु न माननेवाले भी लाभ तो उठाते ही हैं। सामान्य भावसे सभी लाभ उठाते हैं, किंतु जो उन्हें दयालु और प्रभावशाली मानता है, वह विशेष लाभ उठा सकता है। अग्निसे सामान्य गर्मी सभीको मिलती है, किंतु जो जानता है कि यहाँ अग्नि पड़ी है, वह अधिक लाभ उठा लेता है।

पारस घरमें पड़ा है, वह लोहेसे छुआ गया—लोहा सोना हो गया। हमने समझा कि काकतालीयन्यायसे हो गया। हमें पता नहीं कि कैसे हुआ तो थोड़ा लाभ है और जान जायँ तो पूरा लाभ उठा सकते हैं।

इसी प्रकार संत-महात्माओंकी दया, प्रेम, प्रभाव अपार हैं। भगवान्‌का अवतार हुआ। अब हम पश्चात्ताप करते हैं कि उस समय हम भी तो किसी-न-किसी योनिमें थे ही—हमने लाभ नहीं उठाया। अब यदि भगवान्‌का अवतार हो तो हम भी लाभ उठायें, किंतु समझनेकी बात है। भगवान् तो भक्तोंके लिये प्रेमसे बाध्य होकर अवतार लेते हैं। भगवान्‌का प्रकट होना तो भक्तोंके अधीन है।

यदि हम ऐसा विश्वास कर लें तो जो लाभ हमें अवतारसे हो सकता है, वह हम उन भक्तोंसे ही उठा सकते हैं। भगवान्‌की तो यह समझ है कि मेरे भक्त मुझसे भी श्रेष्ठ हैं; क्योंकि मैं तो कानूनमें बँधा हुआ हूँ। मैं ही कानूनको बनानेवाला हूँ, इसलिये मैं कानून तोड़ना नहीं चाहता। पर भक्त इतने बलवान् होते हैं कि उनके वशमें होकर तो मुझे कहीं कानूनको भी लाँघना पड़ता है। इसलिये भक्त मुझसे श्रेष्ठ हैं; किंतु भक्तोंकी मान्यता यह नहीं है। वे तो यही समझते हैं कि भगवान् ही सर्वोत्तम हैं। उनसे बढ़कर कोई नहीं। भक्त जब भगवान्‌को सर्वोत्तम मानता है, तब भगवान् भी भक्तको सर्वोत्तम मानते हैं। भगवान् सत्यसंकल्प हैं। उनका मानना सत्य ही है। अतः किसे छोटा कहें किसे बड़ा।

हमलोगोंको तो यही मानना चाहिये कि यह उनकी प्रेमकी लड़ाई है—अपने लिये तो दोनों ही बड़े हैं, हमारी दरिद्रताको मिटानेके लिये तो दोनों ही असंख्यपति हैं। भगवान्‌के भक्त सभी समयमें मिलते हैं, यह ठीक है; किंतु करोड़ोंमें कोई एक बिरला ही महात्मा होता है। भगवान् कहते हैं—

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥

(गीता ७। ३)

'हजारों मनुष्योंमें कोई एक मेरी प्राप्तिके लिये यत्न करता है और उन यत्न करनेवाले योगियोंमें भी कोई एक मेरे परायण होकर मुझे तत्त्वसे जानता है।' पर भक्त है तो सही न। नहींकी बात तो नहीं कहते। वे सदा ही रहते हैं। भगवान्‌के भक्त न हों तो फिर भगवान्‌की भक्तिका प्रचार ही कौन करे। भगवान् स्वयं अपनी भक्तिका प्रचार नहीं करते। उनके सहायक रहते हैं। अपनी भक्तिका तो कोई भी अच्छा मनुष्य प्रचार नहीं करता, फिर भगवान् तो पुरुषोत्तम हैं। यदि संसारमें भक्त न होते तो भगवान्‌की भक्तिका नाम संसारमें शायद ही रहता, इसीलिये भगवान् भक्तोंके ऋणी होते हैं। आजतक हनुमान्‌जीके ऋणसे न भगवान् मुक्त हुए और न भरतजी। पर हनुमान्‌जी कभी ऐसा नहीं मानते।

जो काम भगवान् नहीं करते, उसे भी भक्त कर देते हैं। इस न्यायसे भगवान्‌से भी बढ़कर भगवान्‌के भक्त हैं।

[पूर्ण]

विचार करो, पूछो, यह किसके लिये है ?

(श्रीमगनलाल हरिभाईजी व्यास)

जैसे सूर्यभगवान्‌की अनन्त किरणें हैं, जैसे समुद्रकी अनेक तरंगें हैं, उसी प्रकार चित्त-देवताकी अनेक वृत्तियाँ हैं। शरीररूपी राज्यमें आत्मा राजा है, मन मैनेजर है। जैसे राजाके पास मैनेजर अनेकों जरूरतोंको उपस्थित करता है और उनको पूरा करनेके लिये मंजूरी लेता है। उसी प्रकार चित्त-देवता आत्मदेवरूपी राजाके पास अनेकों संकल्प उपस्थित करते हैं और उनको पूरा करनेके लिये स्वीकृति लेते हैं।

जितनी बातें मनदेवता उपस्थित करें, उनका पता लगाना चाहिये कि वे किसके लिये हैं। आत्माके लिये तो किसी चीजकी जरूरत नहीं है। वह तो पूर्णकाम है। वह न खाता है, न भोगता है। उसका न जन्म-मरण है, न उसको भय है और न उसमें विकार है, अतः उसके लिये तो किसी बातकी जरूरत नहीं है।

जैसे मन्दिरमें बैठी हुई देव-प्रतिमा किसी भोगकी इच्छा नहीं करती तथापि पुजारी उस देवताके निमित्त ही भोगके लिये सामग्री इकट्ठी करता है और कहता है कि मैं भगवान्‌के लिये भोग लगाता हूँ। भगवान् तो खाते नहीं, खाता है पुजारी। नाम लेता है भगवान्‌का। कहता है कि भगवान् तो वासनाके भूखे हैं।

जैसे मन्दिरमें पुजारी देवताके नामपर अपना मनोरथ पूरा करता है, वैसे ही शरीरमें आत्माके नामपर मन अपने मनोरथ पूरे करता है।

शरीर या जगत्‌के हितकी बात मन उपस्थित करे और उसके लिये क्रिया करे तो उसका नाम होता है— 'यज्ञार्थ-क्रिया।' परंतु उस क्रियाको यदि मन अपनी वासना पूरी करनेके लिये करता है तो यज्ञ-भ्रष्ट हो जाता है। मन मस्ताना है। अपनी वासना पूरी करनेके लिये वह तरह-तरहकी हिकमतें लड़ाया करता है। इसी कारण राज्य छोड़कर फकीर बने हुए राजाको भी मनने गिरा दिया है। वह जटा रखता है, परंतु उसमें भी अमुक रीतिसे जटा रखी जाय तो अच्छी दिखलायी देगी—यह बात मन अपनी वासना पूरी करनेके लिये कराता है। कमण्डलु ही चाहिये, पर अमुक आकारका हो तो काम चले। खड़ाऊँ ऐसी हो तो ठीक—ऐसी-ऐसी बातोंमें भी मन साधकको मायायुक्त करके गिरा देता है।

उससे व्याख्यान दिलवाता है, कथा बँचवाता है, पुस्तकें लिखाता है, उपदेश करवाता है, भजन करवाता है और इन सब कामोंमें मन परमार्थके नामपर अपनी वासना पूरी करनेके लिये प्रयत्न कराता है। यह मन इतना अधिक कुशल है कि दिखलाता तो यह है कि मानो जो कुछ करता है, सब दूसरोंके लिये है; परंतु भीतरसे तो उसके अपने लिये ही सब कुछ होता है। इसको परखना साधारण साधकके लिये बहुत कठिन है। अभ्यासके बिना समझमें नहीं आता। जैसे घोड़ा सिखाये बिना ठीक चाल नहीं चलता, जैसे तोता सिखाये बिना अच्छे वचन नहीं बोलता, वैसे ही मन भी शिक्षा दिये बिना अपनी वासना पूरी करनेकी आदत नहीं छोड़ता। इसलिये मन जो-जो संकल्प उपस्थित करे, उनकी भलीभाँति जाँच करनेके बाद ही उसको सम्मति देनी चाहिये।

जैसे बेईमान मैनेजरका विश्वास नहीं किया जाता, जैसे व्यभिचारिणी स्त्रीका विश्वास नहीं किया जाता, जैसे व्यसनी पुत्रका भरोसा नहीं करते, उसी प्रकार वासनावाले चित्तका विश्वास कभी नहीं होता।

खानेके समय जो खानेकी इच्छा हो, तो देखो कि वह इच्छा पेट भरनेके लिये है या मन जीभके द्वारा स्वादकी इच्छा करता है। जैसे पकड़ा गया चोर कोई-न-कोई बहाना निकालकर साहूकार बननेकी चेष्टा करता है, उसी प्रकार मन भी पकड़ा जानेपर लड़ाई करता है।

जैसे भगवान् श्रीकृष्ण जब कालिय नागके मस्तकपर चढ़े, तब उसका जो सिर ऊपर उठता था, उसीपर पैर



रखकर वे उसे नीचे दबा देते थे। वैसे ही मनरूपी विषैला सर्प जो-जो वासना उपस्थित करे, उसको दबाता जाय, पग-पगपर दबाता जाय।

कौन-सी वासना दबायी जाय और किस वासनाको स्वीकार किया जाय, यह साधक पग-पगपर निश्चय नहीं कर सकता। इसलिये उसे निश्चित सिद्धान्तवाले शास्त्रोंका आधार लेना चाहिये। जो क्रियाएँ केवल जगत् या शरीरके लिये नहीं होतीं, वे सारी क्रियाएँ मनकी वासनाके लिये होती हैं और वे बन्धनकारक हैं, जन्म-मरण प्रदान करनेवाली हैं।

मनका स्वभाव पड़ गया है कि उसका जो आशय होता है, उसे गुप्त रखकर वह दूसरी बात उपस्थित करता है। यदि मन सत्यके अभ्याससे अभ्यस्त हो जाय तो उसका यह स्वभाव सहज ही छूट सकता है।

आजकल सारा ही व्यवहार दम्भयुक्त हो गया है। सभी लोग, जैसे वे हैं, उससे और ही अपनेको दिखलानेका प्रयत्न करते हैं। अन्दरसे हृदयहीन अपनेको बाहरसे हृदयवान् दिखलाना चाहता है, अज्ञानी अपनेको पण्डित दिखलाना चाहता है। कुरूप अपनेको रूपवान् दिखलानेका यत्न करता है। झूठा अपनेको सच्चा दिखलानेकी कोशिश करता है। चोर अपनेको साहूकार-जैसा दिखलानेका यत्न करता है। दुराचारी सदाचारीका बाना धारण करता है। अवगुणी अपनेको गुणवान् दिखलानेका प्रयत्न करता है। ये तो थोड़े-से उदाहरण हैं; परंतु आज तो जगत्-मात्रकी प्रवृत्ति, जो नहीं है वह दिखलानेमें है और इस प्रकार मनकी वासना तृप्त करनेका इरादा है। जबतक हम मनकी वासनाको पूरा करनेका प्रयत्न करते रहेंगे, तबतक लाखों उपायोंसे अनेकों वर्ष चेष्टा करनेपर भी अपने मनको सन्तुष्ट नहीं कर सकेंगे। अतः हम सुखी नहीं हो सकेंगे।

घरमें रहनेपर भी वासनायुक्त मन संताप देता रहेगा। घर छोड़नेपर भी वह नहीं छोड़ेगा। वासनायुक्त मनके वशवर्ती होनेके कारण क्या योगी और क्या भोगी, क्या राजा और क्या रंक, क्या देव और क्या दानव—सभी नष्ट-भ्रष्ट हो रहे हैं और होते रहेंगे। सारी पृथ्वीको वशमें करनेवाले बलवान्‌को भी वासनायुक्त मनने नचाया है। अनेकों योद्धाओंका संहार करनेवाले वीरको भी इस वासनायुक्त मनने रंक बना दिया है। वासनायुक्त मन चौरासी लाख योनियोंमें भरमानेवाला, अनेक दुःख प्रदान करनेवाला तथा सच्चे सुखके लेशका भी अनुभव नहीं करानेवाला है। वासनारहित मन मुक्तिदाता है। प्रत्येक क्रियामें, प्रत्येक विचारमें सूक्ष्मताके साथ इस बातकी जाँच करनेका अभ्यास रखना आवश्यक है कि उसमें मन देवताकी वासना क्या है? वासनायुक्त क्रिया या विचार चिन्ता, दुःख और भय प्रदान करनेवाले हैं। वासनारहित क्रिया आनन्ददायिनी है। इसलिये मनको वासनारहित करनेका यत्न करना आवश्यक है।

वृषभानुनंदिनीके हैं

(प्रो० श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादजी मिश्र 'विनय')

सकल-स्त्रुतिसदन नुतसहसवदन
मदनकदन, दुरितनिकंदिनी के हैं।
सिव-सनकादि-सुक-नारद-सुसिद्धगन-
वंदितविबुध, महाभावस्यंदिनी के हैं॥

तरुन-अरुन मानो कलपलता के दोऊ
पल्लव अमंद, व्रजचंद-चंदिनी के हैं।
'विनय' रसिक-मन हरन सरन दैन
नीके ये चरन वृषभानुनंदिनी के हैं॥

त्यागसे प्रेमप्राप्ति

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

संसारमें हम सभी लोग जीते हैं और जीवित रहना चाहते हैं, पर हम सभी जीवित रहना चाहते हैं अपने सुखके लिये, अपनी इन्द्रियोंकी तृप्तिके लिये, अपने आरामके लिये, अपनी कीर्ति के लिये, अपने यशके लिये, अपने मानके लिये, अपनी सद्गतिके लिये—इसीका नाम स्वार्थ है। और इसी संसारमें वह मनुष्य अच्छा माना जाता है, हम उसे साधु मानते हैं, सत्पुरुष मानते हैं—जो अपने ही सुखकी चाहका हिस्सा दूसरोंके सुखकी चाहमें दे देता है। जीवित रहता है दूसरोंको सुखी बनानेके लिये, दूसरोंको आराम देनेके लिये, दूसरोंको तृप्त करनेके लिये, दूसरोंके अभावोंको मिटानेके लिये, दूसरे किसी प्रकारसे भी दुःख, संकटको न प्राप्त हों इसलिये जितना-जितना वह त्याग करता है, उतना-उतना हम उसे अच्छा मानते हैं और जो इतना त्याग कर दे, जिसका जीवन केवल परार्थ हो जाय, दूसरेका सुख ही जिसका सुख बन जाय और दूसरेका स्वार्थ ही जिसका स्वार्थ बन जाय माने जो पर को स्व बना ले। सच्ची बात तो ये है कि यहाँ कोई पर है नहीं। सारे-के-सारे जितने भी प्राणी हैं, वे सब-के-सब आत्मस्वरूप हैं या सब-के-सब भगवत्स्वरूप हैं, परंतु मोहवश ये बात समझमें नहीं आती। सन्तोंने कहा कि मनमें गौरव मानकर अपनेको परोपकारी मानकर परोपकार करो। यद्यपि परोपकारी मानना अपनेको उचित नहीं है, ठीक नहीं है, पर किसी प्रकारसे भी दूसरेके उपकारमें, दूसरेके सुखमें, दूसरेके लाभमें अपना लाभ मानना सीखो। जितना-जितना मनुष्य उस मार्गमें आगे बढ़ता है, उतना-उतना उसे अपने सुखका, अपने संचित स्वार्थका त्याग करना पड़ता है। जितना-जितना उसका त्याग बढ़ता है, उतना-उतना ही जगत्‌में सुख बढ़ता है और उसे शान्ति मिलती है। **'त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्'**। हम सब शान्ति चाहते हैं, पर शान्ति चाहते हैं अपनी इन्द्रियोंको तृप्त करके। ये शान्ति मिलनेकी नहीं **'न कामकामी'**—भगवान्‌ने गीतामें कहा कि भोगोंकी कामना लगी रहेगी। उसके स्वार्थका नित्य नया रूप बनता रहेगा, सामने आता रहेगा और जितनी ही उसके कामनाकी पूर्ति होगी, उतना ही कामनाका विस्तार होगा। यह नियम है—

'बुझै न काम अगिनि तुलसी कहुँ विषय-भोग बहु घी तें।'

जैसे आगमें घी और ईंधन डालते जाओ, आग बुझती नहीं, भड़कती है, इसी प्रकार कामनाकी पूर्तिसे कामनाकी आग बुझती नहीं है। जितना-जितना हम कामनाको पूर्ण करनेका प्रयत्न करेंगे। उतनी-उतनी हमारी कामनाका विस्तार होगा और जितना-जितना कामनाका विस्तार होगा, उतनी अशान्ति और उतना ही दुःख बढ़ेगा। ये एक बिलकुल सिद्धान्त है, इसे चाहे कोई पहले स्वीकार न करे, पर सत्य सत्य रहता है। स्वीकार करना पड़ता है, जब भोग सामने आता है। तो इसलिये ये कहा कि भई 'पर' को 'स्व' बनाओ। जिसको दूसरा मानते हो, उसको अपना मानो। जिसको दूसरेका स्वार्थ मानते हो, उसको अपना स्वार्थ मानो और जैसे अपने स्वार्थकी सिद्धिके लिये, अपने स्वार्थकी पूर्तिके लिये, अपनी कामनाको पूर्ण करनेके लिये—इस चाहसे, उल्लाससे, प्रयत्नसे, भीतरके मनसे काम करते हो, उसी प्रकार उसके स्वार्थकी सिद्धिके लिये काम करो। ये परार्थ-जीवन है, ये साधु-जीवन है, ये सेवाका जीवन है, इसको अपनी भाषामें कहें तो ये याज्ञिकका जीवन है, यज्ञ करनेवालेका जीवन है। भगवान्‌ने कहा—भई! काम करो, काम करनेमें गफलत न हो और न काम को छोड़ो, परंतु काम ऐसा करो जिसमें बँधो नहीं। तो काम करे और बँधे नहीं—ऐसा कौन-सा काम? तो भगवान्‌ने कहा—

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर॥

(गीता ३। ९)

यज्ञकी भावनासे अतिरिक्त जितने भी काम हैं, वे सब काम बाँधनेवाले हैं तो तुम कर्म करो पर करो यज्ञार्थ, तदर्थ—'**यज्ञो वै विष्णुः**'। भगवान् जो सर्वत्र प्राणीमात्रमें व्याप्त हैं, उन सारे प्राणियोंको सुख पहुँचे, सबका हित हो—इस प्रकारके काम करो और काम करो '**समाचर**'—अच्छी तरहसे करो, परंतु '**मुक्तसङ्गः**' आसक्तिको छोड़कर करो। तुम्हारी न आसक्ति रहे कर्ममें और न आसक्ति रहे कर्मके फलमें। यज्ञके लिये, भगवान्‌की सेवाके लिये कर्म करो, दूसरोंकी सेवा माने 'यज्ञ', दूसरोंकी सेवा माने भगवान्‌की सेवा, दूसरोंकी सेवा माने आत्मसेवा—अपनी सेवा—ये भाव-जगत्‌में जिस दिन होगा—आज हो चाहे युगोंके बाद हो तभी जगत्‌में शान्ति होगी, सुख होगा। नहीं होगा तो नहीं।

किसी व्यक्तिको या किसी वर्गको या किसी समुदायको दुःख देकर दूसरेको हम सुख देना चाहेंगे, किसीको लूटकर हम बड़ा बनना चाहेंगे, द्वेषपूर्वक, रागपूर्वक दूसरा मानते हुए, पराया मानते हुए सुख पहुँचानेकी जो हम चेष्टा करेंगे तो ये परायेपनकी परम्परा चलती रहेगी। कभी कोई बलवान् होगा तो वह दुर्बलको लूटेगा, कभी वह जो पहले दुर्बल था, बलवान् होगा तो जो उस समय दुर्बल होगा, उसको लूटेगा। तो ये तभी मिटेगा जब '**आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन। सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥**' (गीता ६। ३२) सुखमें और दुःखमें अपनी आत्माकी उपमासे जब हम जगत्‌को देखेंगे, दूसरे प्राणियोंको देखेंगे तब वास्तविक सच्चा स्वार्थ-साधन होगा। तभी सद्‌व्यवहार होगा। इसमें मूल बात एक ही है—अपने सुखका त्याग दूसरेके सुखके लिये। ये सन्तका, साधुपुरुषका, अच्छे पुरुषका, सत्पुरुषका स्वभाव होता है तो ये श्रीगोपांगनाओंकी जो बात आती है न—वे इस त्यागमें सर्वोच्च हैं।

संसारका बड़े-से-बड़ा त्याग कर देनेवाले महापुरुष—जिन लोगोंने सारे भोगोंका त्याग कर दिया, जिन लोगोंने संसारके पदार्थोंको छोड़ दिया, उनके मनमें भी मुक्तिकी वासना बनी रहती है। मुमुक्षु जो होता है—अत्यन्त दृढ़ मुमुक्षु, तीव्र मुमुक्षा जिसके मनमें होती है। वह संसारके भोगोंका परित्याग कर देता है तुच्छ मानकर, बाधक मान करके। पर मुमुक्षा होती है। मुमुक्षा माने मोक्षकी इच्छा। एक बन्धनका कोई दुःख है और वह अपनेको है तो अपने बन्धनका दुःख निवृत्त हो जाय—इस इच्छाको लेकर वह संसारके भोगोंका त्याग करता है तो अहंकी चिन्ता, अहंके मंगलकी कामना चाहे वह मंगल मोक्ष हो, उसके मनमें भी रहती है—यद्यपि बड़ी ऊँची कामना है। पर गोपांगनाओंके प्रेममें और श्रीराधाके प्रेममें दो चीज नहीं है। यहाँ तो अहंकी सर्वथा विस्मृति है या अहंका सर्वथा समर्पण है। अपना सुख अपना दुःख—यही प्रेमकी वास्तविक परिभाषा है '**तत्सुखे सुखित्वम्**' उसके सुखसे सुख हो, अपने सुखकी और कोई कल्पना ही नहीं। अपने प्रेमास्पद भगवान्‌के सुखमें अपना सुख है, वह सुख चाहे अपने दुःखमें हो, वह सुख चाहे अपने नरकानलमें दग्ध होनेमें हो, वह सुख चाहे अपने अपमान, तिरस्कारमें हो और वह सुख चाहे अपनी दुर्गतिमें हो, वह सुख चाहे अपने इन्द्रिय-सुखमें भी हो—ये सुख और दुःख जो अपना है—ये दोनों ही स्वीकार हैं—यदि अपने भगवान्‌को प्रेमास्पद भगवान्‌को सुख होता हो तो ये जो त्यागकी पराकाष्ठा है, उसमें जीवन रखनेकी भावना इसीलिये और मरनेकी भावना भी इसीलिये है और मरनेसे सुख हो तो मृत्यु आज आ जाय बड़ा सुन्दर और जीवनमें सुख तो हम कभी मरें नहीं और मरकर भी जी उठें।

एक बात उस दिन सुनायी थी कि नन्दबाबा श्रीकृष्ण और बलरामको मथुरामें छोड़ करके आ गये। जब ये कंसको कर देने गये और वहाँ श्रीकृष्ण, बलराम साथ गये। धनुष-यज्ञ हुआ, उसमें कंस मारा गया, उसके बाद वसुदेव-देवकी छूट गये जेलसे। श्रीकृष्ण,



बलराम वहाँ रह गये—ये वहाँपर सारी चीजें हुई। पीछेसे यशोदा बड़ी व्याकुल, यशोदामैया श्यामसुन्दरके बिना, अपने नीलमणिके बिना रह न सकें। रात-दिन वे जागें, रात-दिन खाना-पीना बन्द, बड़ी आकुलता, बड़ी आतुरता। रास्ते जाय उससे पूछें—भई! तुम मथुरासे आये हो क्या? मथुरा जाओगे क्या? तो लोगोंने उस रास्तेसे निकलना बन्द कर दिया यशोदाके भयसे कि वे तंग करेंगी। तो वे पल-पलमें प्रतीक्षा करती थीं कि अब आते होंगे। अब आते होंगे। जरा-सी कोई आवाज सुनायी दे—मानो रथ आया है। रथ एक दिन आया। यशोदा बाहर गयी। देखा, अपने पति नन्दबाबाको देखा, अकेले रथमें बैठे हैं। नन्दबाबा उतरने लगे, उससे पहले ही वे मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं। अपने स्वामीको आया हुआ देखकर मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं—इसका अर्थ उनका स्वामीके प्रति प्रेम नहीं—सो बात नहीं है। श्रीकृष्ण-बलरामके बिना नन्दबाबा लौट आये, इसलिये गिर पड़ीं। चेत कराया गया। जब होश हुआ तो सबसे पहले रोती हुई नन्दरानीने—यशोदामैयाने कहा—स्वामिन्! आप जीवित क्यों आ गये? ये पतिसे प्रश्न है—आप जीवित क्यों आ गये? कैसे आ गये? आपके प्राण रहे कैसे? मैंने सुना सुमन्त रामसीताको वनमें छोड़ आये और उस समाचारको सुनकर दशरथने प्राण त्याग कर दिये और आप स्वयं जाकर श्रीकृष्णको छोड़ आये। श्यामसुन्दरको वहाँपर और आपके प्राण लौट आये?

मेरे प्राण तो वहीं निकल गये होते जिस समय कन्हैयाने कहा—बाबा! मैं यही रह जाऊँ, तब मेरे प्राण छटपटाने लगे। मैं व्याकुल हो गया तो कन्हैया मेरी गोदमें आ बैठा और बोला—बाबा! तू जा और मैं थोड़े ही दिनोंमें जल्दी आऊँगा। अब मैं मरता कैसे? मैं अगर वहाँ प्राण त्याग कर दूँ और कन्हैया कलको आये और मैं न मिलूँ तो मेरा कन्हैया कितना रोयेगा? यशोदा! इसलिये मेरे प्राण रह गये, नहीं तो प्राण नहीं रहते। ये व्रजका बड़ा सुन्दर भाव अपने प्राणोंका रखना भी, इसलिये कि प्रियतमको सुख हो। अपने प्राणोंका परित्याग भी इसलिये कि प्रियतमको सुख हो। न प्राणोंके रखनेमें मोह है, न प्राणोंके जानेमें चिन्ता है। अगर प्राण जानेमें सुख हो तो तैयार हैं वह अपने प्राणोंको देकर अपने प्रियतमको सुखी बनानेके लिये—उनका तो यही स्वभाव है। इस प्रेमका स्वभाव है—अपने प्रियतम प्रेमास्पदको सुखी बनाते रहना—ये जीवन है, ये जीवनका स्वभाव है, ये जीवनका स्वरूप है, न कोई तर्क है, न कोई बुद्धि-कौशल है, न कोई किसीसे विवाद है, न अपनेको ऊँचा सिद्ध करनेकी कोई चेष्टा है, न अपनेको साधक मानना है, न भक्त मानना है, न प्रेमी मानना है—ये तो एक इस प्रकारकी बड़ी दिव्य सुन्दर आसक्ति है—

'सा परानुरक्तिरीश्वरे।'

'तदर्पिताखिलाचारिता तद्विस्मरणे परम-व्याकुलता॥'

ये इस प्रकारकी प्राणोंकी एक स्वाभाविक स्थिति हो जाती है कि जब वह अपने प्राणधन, प्राणजीवन प्राणाराम, प्राणप्राण श्रीश्यामसुन्दरके सुखमें ही अपने जीवनको अपने सुखको पर्यवसित कर देता है। बस, श्यामसुन्दरका सुख मेरा सुख, उनकी हँसी मेरे जीवनकी हँसी, उनकी उदासी मेरे जीवनका सर्वथा विनाश। देख नहीं सकता, देखना चाहता नहीं—ये इस प्रकारकी स्थिति जब मनुष्यके जीवनमें आती है, तब समझना चाहिये कि ये प्रेमके मार्गपर आया। [क्रमशः]

एकान्त-चिन्तन

(पं० श्रीसूरजचन्दजी सत्यप्रेमी 'डाँगीजी')

एकान्तमें विराजिये और चिन्तन कीजिये—यह देह, कक्षमें है। यह कक्ष, मन्दिरमें है। यह मन्दिर, गलीमें है। यह गली, मुहल्लेमें है। यह मुहल्ला, गाँवमें है। यह गाँव, तहसीलमें है। यह तहसील, जिलेमें है। यह जिला, डिवीजनमें है। यह डिवीजन, प्रदेशमें है। यह प्रदेश, राष्ट्रमें है। यह राष्ट्र, द्वीपमें है। यह द्वीप, पृथ्वीमें है। यह पृथ्वी, जलमें है। यह जल, अग्निमें है। यह अग्नि, वायुमें है। यह वायु, आकाशमें है। यह आकाश, मनमें है। यह मन, बुद्धिमें है। यह बुद्धि, अहंकारमें है। यह अहंकार, जीवमें है। यह जीव, आत्मामें है और यह आत्मा, परमात्मामें है।

देहसे लगाकर पृथ्वीतक सब मिट्टी है और वह कल्पनासे ही कमरा, घर, गली, मुहल्ला, गाँव, तहसील, जिला, डिवीजन, प्रदेश, राष्ट्र, द्वीप या पृथ्वी कहलाती है। वस्तुत: यह मिट्टी अखण्ड है—कहीं अलग-अलग नहीं। उसमेंसे गन्ध निकल गयी कि वह जल हो गया। जलमेंसे रस निकल गया कि वह अग्नि हो गया। अग्निमेंसे रूप निकल गया कि वह वायु हो गया। वायुमेंसे स्पर्श निकल गया कि वह आकाश हो गया। आकाशमेंसे शब्द निकल गया कि वह मन हो गया। मनमेंसे कल्पना निकल गयी कि वह बुद्धि हो गयी। बुद्धिमेंसे निश्चय निकल गया कि वह अहंकार बन गया। अहंकारमेंसे गुण निकल गये कि वह जीव बन गया। जीवमेंसे भिन्न भाव निकला कि वह आत्मा हुआ और आत्मामें सर्वभाव आया कि वह परमात्मा ही है।

गन्ध है इसीलिये रोम, त्वचा, नाड़ी, मांस और अस्थिरूप पृथ्वी है, जिसमें जल, अग्नि, वायु और आकाशके विषयोंका भी भाग है। गन्धका ग्रहण घ्राणेन्द्रियसे होता है और विसर्जन गुदेन्द्रियसे। रस है इसीलिये लार, स्वेद, मूत्र, शुक्र और शोणितरूप जल है। जिसमें पृथ्वी, अग्नि, वायु और आकाशके विषयोंका भी भाग है। रसका ग्रहण जिह्वासे होता है और विसर्जन मूत्रेन्द्रियसे। रूप है इसीलिये निद्रा, तृषा, क्षुधा, कान्ति और आलस्यरूप अग्नि है, जिसमें पृथ्वी, जल, वायु और आकाशके विषयोंका भाग भी है। रूपका ग्रहण चक्षु-इन्द्रियसे होता है और देखकर पैरोंसे चला जाता है। स्पर्श है इसीलिये प्रसारण, धावन, बलन, चलन और आकुंचनरूप वायु है, जिसमें पृथ्वी, जल, अग्नि और आकाशके विषयोंका भी भाग है। स्पर्शका ग्रहण हाथोंसे स्पर्शेन्द्रियद्वारा होता है। शब्द है इसीलिये काम, क्रोध, शोक, मोह और भयरूप आकाश है, जिसमें पृथ्वी, जल, अग्नि और वायुके विषयोंका भी भाग है। शब्दका ग्रहण कर्णेन्द्रियद्वारा होता है और विसर्जन वाणीसे। इसी प्रकार मन, बुद्धि, अहंकार, जीव, आत्मा और परमात्माके विषयमें भावोंका विश्लेषण और संश्लेषण कर लेना चाहिये।

व्यान-नामक प्राणद्वारा नाभिस्थानसे परा वाणीका स्फुरण होता है। समान-नामक प्राणद्वारा हृदयस्थानसे पश्यन्ती वाणीकी ध्वनि होती है। उदान-नामक प्राणद्वारा कण्ठस्थानसे मध्यमा वाणीका निनाद होता है। इसी प्रकार अन्य प्राणोंके जरिये जिह्वास्थानसे वैखरी वाणीका उच्चारण होता है।

इन सबसे अपने मन, बुद्धि, अहंकार, जीव और आत्माका सम्बन्ध हटाकर परमात्मामें जोड़ना ही साधनाकी सिद्धि है।

परमात्मा अन्दर और बाहर सर्वत्र समानरूपसे सर्वदा सम्पूर्ण है। सब वही है। सबमें वही है, उसीमें सब है। उसीसे सब है और वह स्वयं सब ओरसे सब है। धर्मरूप मूल वही है। अर्थरूप शाखा-प्रशाखा भी वही है। कामरूप पत्र-पुष्प भी वही है। मोक्षरूप फल भी वही है और प्रभु-प्रेमरूप रस भी वही है। जिस प्रकार पृथ्वीमें अनन्त बीज हैं, जलमें अनन्त बिन्दु हैं, अग्निमें अनन्त स्फुलिंग हैं, वायुमें अनन्त झोंके हैं, आकाशमें अनन्त शब्द हैं, मनमें अनन्त वृत्तियाँ हैं, बुद्धिमें अनन्त निश्चय हैं, अहंकारमें अनन्त गुण हैं,

जीवमें अनन्त चैतन्य हैं, आत्मामें अनन्त ज्ञान हैं; उसी प्रकार परमात्मामें अनन्त आनन्द हैं।

तनिक प्रयोग करो—सिरपर दाँत लगाओ और दाँतोंमें बाल उगाओ—कितना भद्दा?

विश्वास करो, प्रभुने जहाँ, जैसी, जिस विधिसे, जब-जब जो भी विधान किया है, वह सब आनन्दके लिये ही है।

उत्कृष्ट भक्ति यही है कि हम उसके विधानके विरुद्ध कभी कुछ भी कामना न करें।

वह दिन धन्य होगा, जब हम ऐसी भक्तिमें स्थिर होकर प्रभुके अनन्त प्रेमको प्राप्त करेंगे। प्रभुका प्रेम तो सर्वत्र व्यापक है, पर हमने जबतक उसे प्राप्त नहीं किया, तबतक आनन्दके स्वप्न भी नहीं आ सकते।

धन्य हैं वे, जिन्होंने प्रभुको अपना बना लिया। धन्य हैं वे, जिनको प्रभुने अपना बना लिया। सबसे अधिक धन्य हैं वे, जो स्वयं प्रभुरूप होकर भी प्रभुके प्रेमके लिये सर्वदा लालायित हैं, वे ही दुःख और सुखकी अनन्त लीलाओंमें भाग लेकर भी सबसे अलग हैं।

भारतीय दर्शन-शास्त्र आपसमें वाद-विवाद तो करते हैं, पर जैसे समुद्रकी अनन्त लहरें आपसमें टकराती हैं तो मानो परस्पर गले मिलनेके लिये, उसी प्रकार न्याय, वैशेषिक, सांख्य-योग, पूर्वमीमांसा-उत्तरमीमांसा, जैन-बौद्ध और चार्वाक-आस्तिक आपसमें झगड़ते हैं तो परस्पर मिलनेके लिये—मिटनेके लिये और उस अनन्तकोटि-ब्रह्माण्डनायक सच्चिदानन्दघन पूर्णतम पुरुषोत्तम अद्वन्द्व द्वन्द्वदेह द्वन्द्ववृन्द-निकन्दन नन्दनन्दनको अपने सहस्र-सहस्र फणोंपर विराजमान करके नचानेके लिये और अन्तमें उसकी शरण ग्रहण करके वृन्दावनवासियोंको सुखी करनेके लिये यमुना नदीसे भाग जाते हैं।

आत्यन्तिक दुःख-निवृत्ति और परम सुख-प्राप्तिका यही रहस्य है।

प्रेरक-प्रसंग—

दण्डसे नहीं, प्रेमसे जीत लो संसार

(श्रीमोहनलालजी मगो)

बाजीराव पेशवा थे। एक बार उनके एक बड़े ऊँचे अफसरने यह भूल की कि वह शत्रुओंसे मिल गया और बाजीरावकी कुछ भूमि शत्रुओंके हाथ चली गयी। लड़ाई चलती रही, वह अफसर बाजीरावके सैनिकोंके द्वारा पकड़ा गया और उसे बाजीरावके सामने लाया गया।

बाजीरावने उसकी ओर देखा और कहा कि तुम जानते हो किसके सामने हो? वह बोला—'हाँ महाराज! मैं जानता हूँ।' 'तुम जानते हो कि इस जुर्मकी सजा क्या हो सकती है?' वह बोला—'पकड़ा हुआ हूँ, इसलिये मजबूर हूँ।' बाजीरावने कहा, 'हम तुम्हें दण्ड देंगे।' इसपर वह बोला—दीजिये। बाजीरावने कहा—सुनो! आजसे तुम बाजीरावकी सेनाके प्रधान सेनापति हो और अब तुम जाओ, जितनी भूमि गयी है, उससे दुगुनी भूमि लेकर आओ। यह सुनते ही उसका दिल बदल गया। उसके मनमें आया कि कहाँ मैं बागी और कहाँ इनका मुझपर इतना विश्वास! ये चाहते तो मुझे आज कुछ भी दण्ड दे सकते थे, पर इनका मेरे प्रति कितना विश्वास है कि इन्होंने मुझको प्रधान सेनापति बना दिया। सचमुच वह पेशवा बाजीरावका अत्यन्त भक्त हो गया और शत्रुओंसे लड़कर दुगुनी-तिगुनी जमीन ले आया।

इस प्रकार अपने सद्व्यवहार, उदारता, शालीनता, विनय, सच्चे प्रेम और हितसे दूसरेके हृदयपर विजय प्राप्त की जा सकती है।

सबमें भगवान् हैं, यह देखकर सबका आदर करो।

साधकोंके प्रति—

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

'सदा दिवाली संतकी, आठों पहर आनन्द'— परमात्माको जाननेवालेके लिये सदा दीवाली—आठों पहर आनन्द-ही-आनन्द रहता है। परमात्मा तो सबके लिये ही हैं, फिर संत-महात्माको ही आठों पहर आनन्द क्यों रहता है? सबको क्यों नहीं रहता? कारण क्या है? एक बड़ी भारी भूल होती है कि हम वस्तुओंमें, व्यक्तियोंमें, घटनाओंमें, परिस्थितियोंमें सुख मान लेते हैं। विचार करें कि किसी परिस्थितिमें अगर सुख है तो उसी परिस्थितिमें हरदम सुख रहना चाहिये और अगर परिस्थिति सच्ची है तो वह हरदम रहनी चाहिये। वास्तवमें परिस्थिति सबको सुख नहीं देती और हरदम सुख नहीं देती। रुपयोंमें अगर सुख है तो उनसे कुत्तोंको भी सुख मिलना चाहिये, गधोंको भी सुख मिलना चाहिये। रुपयोंसे सबको सुख नहीं मिलता; क्योंकि रुपयोंमें सुख है नहीं, परंतु परमात्मासे सबको स्वतः आनन्द मिलता है, शान्ति मिलती है। लक्ष्मणने जब शूर्पणखाके नाक-कान काट डाले, तब भगवान् राम और लक्ष्मणको मारनेके लिये खर-दूषण आये, परंतु जब उन्होंने भगवान्‌को देखा, तब वे कहते हैं कि ये तो मारनेके लायक नहीं हैं ***'बध लायक नहिं पुरुष अनूपा'*** (रा०च०मा० ३।१९।५)। तात्पर्य यह है कि भगवान्‌को जाने बिना भी उनसे आनन्द मिलता है। जो वस्तु आनन्ददायक होती है, उससे दूसरोंको स्वतः आनन्द मिलता है। संसारमें सबको परमात्मासे ही सुख मिलता रहा है। चाहे बतासा हो, चाहे हलुआ हो, कुछ भी हो, मिठास सब चीनीकी ही है। गलती यह होती है कि नयी-नयी भावना करके संसारमें सुख ढूँढ़ते हैं। अगर परमात्माको ढूँढ़ें तो परमात्मा मिल जायँ।

अगर किसी वस्तुमें, व्यक्तिमें, परिस्थितिमें, क्रियामें सुख होता तो सबको सुख मिलता। वास्तवमें किसी भी वस्तु, व्यक्ति, क्रिया आदिमें सुख नहीं है। गोस्वामीजी महाराज कहते हैं—

हेतु रहित जग जुग उपकारी। तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी॥

(रा०च०मा० ७।४७।५)

भगवान् और उनके भक्तोंसे सबको मुफ्तमें सुख होता है। वे कुछ दें अथवा न दें, उनसे स्वतः शान्ति मिलती है। जो उनसे वैर-भाव रखता है, उसे भी उनसे शान्ति मिलती है। उनके द्वारा स्वतः-स्वाभाविक ही सबका हित होता है—**'सुहृदं सर्वभूतानाम्'** (गीता ५।२९), **'सुहृदः सर्वदेहिनाम्'** (श्रीमद्भा० ३।२५।२१)। उनकी रासलीला स्वतः ही हरदम चलती रहती है। श्रीजीको देखकर भगवान् श्रीकृष्ण सुखी होते हैं और श्रीकृष्णको देखकर श्रीजी सुखी होती हैं। अतः भगवान् भक्तोंके साथ हरदम ही रासलीला करते हैं। हमें वहम है कि रुपयोंमें सुख है, सोनेमें सुख है, स्त्री-पुत्रमें सुख है, घरमें सुख है। अगर इनमें सुख होता तो इनसे कभी दुःख होना ही नहीं चाहिये। आप थोड़ा विचार करें तो यह बात बिलकुल समझमें आती है कि अगर इनमें सुख हो तो इनसे सबको सुख होना चाहिये और हरदम ही सुख रहना चाहिये। परमात्माका जो सुख है, वह हरदम ही रहता है—जाग्रत्‌में, स्वप्नमें, सुषुप्तिमें, उत्पत्तिमें, प्रलयमें, संहारमें।

सब जग डरपे मरणसे, मेरे मरण आनन्द।
कब मरिये कब भेटिये, पूरन परमानन्द॥

जब मरणमें भी आनन्द है तो फिर दुःख किस जगह होगा? ज्यादा-से-ज्यादा दुःख मरनेमें ही होता है। प्राण निकल जायँ—इससे बढ़कर और दुःख क्या होगा? परंतु उसमें भी भक्तोंको आनन्द आता है; क्योंकि वे सुखदायी-दुःखदायी परिस्थितिको नहीं देखते; प्रत्युत परमात्माको देखते हैं। परमात्मा सब जगह

मौजूद हैं, अतः दुःख कहाँ हो? कैसे हो? इसलिये अपनेको चेत हो जाना चाहिये कि दूसरी जगह सुख है ही नहीं, केवल भगवान्‌में ही सुख है। भगवान्‌में लग जायँगे तो सदा आनन्द हो जायगा, सब समय आनन्द हो जायगा, सम्पूर्ण परिस्थितियोंमें, सम्पूर्ण घटनाओंमें आनन्द-ही-आनन्द हो जायगा। दुःख लेशमात्र भी नहीं रहेगा। परमात्मा सत्-चित्-आनन्द-स्वरूप हैं, फिर उनमें दुःख आये कहाँसे? हमीं अपने मनमें यह भावना कर लेते हैं कि भगवान्‌ने हमें दुःख दे दिया। भगवान् दुःख कहाँसे लाये? उनके दरबारमें दुःख है ही नहीं। मनुष्य खुद ही कल्पना कर लेता है कि भगवान्‌ने दुःख दे दिया और दुःख पाता है। इसलिये हर समय आनन्द रहना चाहिये। परमात्मा हर वस्तुमें रहते हैं, अतः कोई वस्तु दुःखदायी नहीं है। मीराबाईको जहर दिया तो वे उसे पी गयीं। प्रह्लादको आगमें रख दिया तो वे विचलित नहीं हुए। उनकी दृढ़ भावना थी कि भगवान् हैं। आपके सामने काँचका टुकड़ा आ जाय और आपके भीतर जँच जाय कि यह हीरा है तो उस टुकड़ेमें भी आनन्द दिखेगा। भावनासे ही सुख-दुःख दिखता है।

'वासुदेवः सर्वम्' का अनुभव होनेपर सब जगह आनन्द-ही-आनन्द होगा। मौनमें भी आनन्द, बुखारमें भी आनन्द, घाटेमें भी आनन्द, सब समय आनन्द रहेगा। ऐसी कोई परिस्थिति होगी ही नहीं, जिसमें दुःख हो, परंतु आपने वस्तुओंमें सुखकी कल्पना कर ली तो उसमें सुख दिखने लग गया। चोर दूसरोंके धनमें सुख देखता है, धनके लिये दूसरोंको मार ही देता है, पर वह क्या सुखी हो जाता है? क्या कभी दुखी नहीं होता? जो अपने सुखके लिये पशुओंको मारकर खा जाता है, वह क्या सदाके लिये सुखी हो जाता है? जो वस्तुओंमें सुख देखता है, उसे कभी सुख नहीं मिल सकता। परमात्माके सिवाय और जगह किसीको कभी सुख नहीं मिला, इतिहास देख लो; क्योंकि और जगह सुख है ही नहीं। जो रात-दिन भोगोंमें लगे हैं, सांसारिक सुखमें लगे हैं, वे भी भगवान्‌की बातें सुनते हैं, उनमें मन लगाते हैं तो उन्हें प्रत्यक्ष आनन्द आता है। भगवान्‌से होनेवाले आनन्दमें न शब्द है, न स्पर्श है, न रूप है, न रस है, न गन्ध है, न आलस्य है, न प्रमाद है, न नींद है, न रुपये-पैसे हैं, न धन-सम्पत्ति है। संयोगसे होनेवाला सुख इसमें नहीं है। आश्चर्यकी बात है कि भगवत्सम्बन्धी बातोंमें पशु-पक्षी भी आकृष्ट हो जाते हैं। व्रजमें एक झाड़ी है, जिसमें संत रहते हैं और भजन करते हैं, वहाँ साँप बहुत हैं, पर वे किसीको काटते नहीं, पासमें होकर निकल जाते हैं। कोई माई खेतमें काम करने जाती है तो घरमें रोटी रख जाती है कि कोई बाबा आये तो यह रोटी दे देना। जैसे अपने बालककी चिन्ता होती है, ऐसे उनकी चिन्ता करती है।

अगर मनुष्य सच्चे हृदयसे भगवान्‌में लग जाय तो कभी दुःख हो ही नहीं सकता। श्रीरामजीने कभी वैरीका भी अनभल (अहित) नहीं किया—***'अरिहुक अनभल कीन्ह न रामा'*** (रा०च०मा० २।१८३।६)। ऐसे ही भगवान्‌के भक्तोंसे भी किसीका अहित नहीं होता। मनुष्य अपने-आप ही दुःख पाता है। इतनी पक्की, ठोस बात होते हुए भी मनुष्य भगवान्‌की तरफ नहीं लगते; क्योंकि उन्हें यह वहम है कि रुपयोंमें सुख है, मानमें सुख है, आदरमें सुख है।

राक्षसोंकी भी भगवान्‌की तरफ रुचि होती है, भगवान्‌में विलक्षणता दिखती है, परंतु वृत्ति खराब होनेसे वे उन्हें पकड़ नहीं पाते। हमलोग भी सत्संगकी बातें सुनते हैं, पर भीतरमें लोभ है, भोगोंकी कामना है, धनका महत्त्व है, इसलिये ये बातें ठहरतीं नहीं। अगर हम सत्संगकी बातोंको महत्त्व दें तो सुननेमात्रसे ही सबको आनन्द आ जाय, परंतु भीतरमें महत्त्व भोगोंको और रुपयोंके संग्रहको दिया है, इसलिये परमात्मप्राप्तिकी बात जँचती ही नहीं।

संतोंके पास कुछ भी नहीं है, पैसा नहीं है, फिर भी वे मस्त रहते हैं, परंतु बड़े-बड़े राजा-महाराजा, लखपति-करोड़पति दुःख पाते हैं। उनके हृदयमें जलन, अशान्ति रहती है। अगर पैसोंमें सुख हो तो सभी पैसेवालोंको सुख होना चाहिये, पैसे रहते हुए दुःख नहीं होना चाहिये। ऐसे ही अगर परमात्मामें दुःख हो तो परमात्मामें तल्लीन होनेवालोंको दुःख होना चाहिये, परंतु उन्हें दुःख होता ही नहीं। वहाँ तो आनन्द-ही-आनन्द है। परमात्माके सिवाय और कहीं भी कोई आदमी टिक सकता ही नहीं और वह परमात्मामें लग जाय तो कहीं जाता ही नहीं, उसीमें मस्त हो जाता है, यह प्रत्यक्ष बात है। आप अपने जीवनमें देखें, जहाँ असली सत्संग मिलता है, वहाँ मन आकृष्ट हो जाता है। भगवत्सम्बन्धी बातोंमें मुफ्तमें सुख मिलता है। जहाँ भगवत्सम्बन्धी बातें होती हैं, उस स्थानमें आनन्द आता है, शान्ति मिलती है। जो सत्संग करता है और साधन करता है, उसे तो इन बातोंका अनुभव होता है, परंतु जो कभी सत्संग नहीं करता, उसे इन बातोंका अनुभव नहीं होता, उसमें बेहोशी रहती है। भगवान्‌की हरदम रासलीला होती है। बिलकुल मुफ्तमें आनन्द मिलता है। दुःख मुफ्तमें नहीं मिलता, उसके लिये कुछ-न-कुछ मेहनत करनी पड़ती है। आप समझते हैं कि मेहनत करनेसे सुख मिलता है, पर यह आपका वहम है। सुख स्वतःसिद्ध है। दुःखके लिये उद्योग करना पड़ता है। अगर भगवान्‌की शरण हो जायँ तो मौज हो जाय।

ना सुख काजी पण्डिताँ, ना सुख भूप भयाँ।
सुख सहजाँ ही आवसी, तृष्णा रोग गयाँ॥

गौ-स्तुति

(श्रीराजपतिजी बरुआ)

जय सुरभि स्वरूपा जय गौमाता मनुज देव हितकारी।
हे सुमति प्रदाता विनय हमारी दर्शन दे शुभकारी॥
सिर लगे चरणरज पावन कर दे तन मन निर्मलकारी।
हैं माता तेरे रस नीरोगी अमृत से गुणकारी॥
सेवक सुधिकर्ता सदगति कर्ता तुम हो माँ बरदानी।
बल सम्पति दाता संतति दाता तुम हो माँ कल्यानी॥
सानिध्य सुखागर सब गुण आगर हरि हर अज सुरधारी।
आराध्य उजागर सुतहित नागर क्षिति मुद मंगलकारी॥
आहार सुधारक सौम्य स्वरूपा सत्य प्रेरणाकारी।
आह्लाद प्रदाता सहज प्रसीदा सकल अमंगलहारी॥
घर का प्रकाश हो धर्मधाम हो पंचगब्य की दाता।
हे दिब्य दर्शिनी चित रमणीया तुम जन मन की माता॥
सुख धाम कृपाला वैभवदाता सेवक विपति निदाना।
गोविन्द के संग सोते जगते हमको छवि दिखलाना॥
नित सेवाकारी मनुज धन्य हैं भूपति हैं बड़भागी।
हम सदा सदा ही रहें आपके चरणों के अनुरागी॥

जीवनमें सुखी कैसे रहें ?

(श्रीरमेशचन्द्रजी बादल)

संसारका एक नाम 'दुःखालय' भी है। गीता (८।१५)-में भगवान् श्रीकृष्णने संसारको **'दुःखालयमशाश्वतम्'** कहा है, अर्थात् यह अनित्य जगत् दुःखोंसे पूर्ण है। अतः स्पष्ट है कि इस संसारमें जो भी जन्म लेता है, उसे दुःखोंका सामना करना पड़ता है। उसे हमेशा ही दुःखोंका भय सताता रहता है। यह भी सत्य है कि प्रत्येक मनुष्य दुखी जीवनसे बचना चाहता है और जीवनभर सुख-शान्तिका जीवन जीनेके लिये ईश्वरसे कामना-प्रार्थना करता है। मनुष्य-जीवनमें सुख-दुःखका आना-जाना एक स्वाभाविक क्रिया है। सुखके बाद दुःख और दुःखके बाद सुख क्रमशः जीवनमें आते रहते हैं। मनुष्य न तो पूरे जीवन सुखी ही रहता है और न दुखी। यही प्रकृतिका नियम है।

भगवान् श्रीकृष्णने गीता (१२।१७)-में कहा है कि जो सभी प्रकारके सुख-दुःखमें, सफलता और असफलतामें सम रहता है, वह मुझे प्रिय है—

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः॥

एक अन्य श्लोकमें भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको जय-पराजय, लाभ-हानि और सुख-दुःखमें समान रहनेके लिये कहा है—**'सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ'** (गीता २।३८)। उक्त दोनों श्लोकोंमें भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनके माध्यमसे संसारको ज्ञान दिया है कि मनुष्यको सभी प्रकारकी सुखद और दुःखद परिस्थितियोंमें समभावसे रहना चाहिये।

वाल्मीकिरामायणमें कहा गया है—**'दुर्लभं हि सदा सुखम्'** अर्थात् सदा सुख मिले यह दुर्लभ है।

वेदव्यासजीने कहा है—सुखके बाद दुःख और दुःखके बाद सुख आता है, कोई भी न तो सदैव दुःख पाता है और न निरन्तर सुख ही प्राप्त करता है।

महाकवि गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है—

तुलसी इस संसार में, सुख दुःख दोनों होय।
ज्ञानी काटे ज्ञान से, मूरख काटे रोय॥

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि मनुष्य-जीवनमें सुख और दुःख दोनों ही क्रमशः आते रहते हैं, इसलिये आवश्यक है कि हम न तो सुखमें घमण्ड करें और न दुःखमें दुखी रहें। सुख और दुःखको मेहमान समझकर स्वागत करें। दुःखमें विचलित न होकर धैर्यके साथ सामना करें। यह समझें कि दुःख कुछ समय बाद नहीं रहेगा। जीवनमें सुखी रहनेके लिये निम्नलिखित बातोंपर ध्यान देना चाहिये।

(१) आस्तिक बनिये—आप ईश्वरके जिस रूपपर श्रद्धा करते हों, उसकी प्रार्थना करें। अपनी चिन्ता-परेशानीको दूर करनेहेतु निवेदन करें। 'ईश्वर जो कुछ करता है—अच्छा ही करता है'—इस सूत्रपर विश्वास करें। गीताका सार है—शरणागति। जो अनन्य भावसे भगवान्‌की शरण हो जाता है, उसे भगवान् सम्पूर्ण पापों और दुःखोंसे मुक्त कर देते हैं। गीता भगवान् श्रीकृष्णकी वाणी है। भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—**'मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि'** (गीता १८।५८) अर्थात् मुझमें चित्त लगा लो फिर मेरी कृपासे तुम सारी कठिनाइयोंको पार कर जाओगे। **'नामसङ्कीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम्'** भगवान्‌के नामोंका संकीर्तन और चरणोंमें प्रणाम सारे पापों एवं दुःखोंको सदाके लिये नष्ट कर देता है। सदैव स्मरण रखें कि संसारके क्लेश-दुःखोंसे पीड़ित हृदयकी शान्तिके लिये ईश्वरकी कृपाके सिवाय दूसरा कोई उपाय नहीं है। ईश्वर हमारी प्रार्थना अवश्य ही स्वीकार करेंगे—ऐसा मनमें दृढ़-विश्वास होना चाहिये। श्रद्धापूर्वक की गयी प्रार्थना कभी निष्फल नहीं जाती। अतएव जीवनमें सुख-शान्तिके लिये आस्तिक बनिये, ईश्वरपर भरोसा करिये। दिनका प्रारम्भ प्रार्थनासे करें और अन्त प्रार्थनासे करें। नीतिश्लोकके अनुसार—**'कोटिं त्यक्त्वा हरिं स्मरेत्'** अर्थात् करोड़ काम छोड़कर भगवान्‌का स्मरण करना चाहिये।

(२) माता-पिताकी सेवा करें—माता-पिता प्रत्यक्ष देव हैं। उनकी सेवा (तन-मन-धनसे) करनी चाहिये और उनका आशीर्वाद प्राप्त करना चाहिये। माता-पिताकी उपेक्षाकर उनको दुःख पहुँचाना अधर्म

एवं अपराध है। माता-पिताके आशीर्वादसे ही मनुष्यको जीवनमें सुख-शान्ति और सफलता प्राप्त हो सकती है। माता-पिताको सुख देना ही सुखी रहनेका सर्वोत्तम उपाय है। **'सुख बाँटिये-सुख मिलेगा'** इस उक्तिका अपने जीवनमें अक्षरशः पालन करना चाहिये। श्रीरामचरितमानसकी शिक्षा है—

सुनु जननी सोइ सुतु बड़भागी। जो पितु मातु बचन अनुरागी॥

(रा०च०मा० २।४१।७)

अनुचित उचित बिचारु तजि जे पालहिं पितु बैन।
ते भाजन सुख सुजस के बसहिं अमरपति ऐन॥

स्मरण रखें—

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्॥

(मनुस्मृति)

जो अपनेसे बड़ों (माता-पिता-गुरुजन)-को नित्य प्रणाम करता है, उनकी सेवा करते हुए आशीर्वाद प्राप्त करता है, उसके आयु, विद्या, यश तथा बल—ये चारों बढ़ते हैं। पद्मपुराणमें बताया गया है कि इस लोक और परलोकके कल्याणके लिये माता-पिताके समान कोई तीर्थ नहीं है।

धर्मग्रन्थों एवं सन्तोंके वचनोंका सार यही है कि माता-पिताकी तन-मन-धनसे सेवा करो और सदैव उनको खुश रखो तभी जीवनमें सुख-शान्ति प्राप्त करोगे।

(३) सुख दो, सुख मिलेगा—संत तुलसीने कहा है कि सुख देनेपर सुख मिलेगा और दुःख देनेपर दुःख मिलेगा—

चार वेद षद् शास्त्र में बात मिली हैं दोय।
सुख दीन्हे सुख होत है दुःख दीन्हे दुःख होय॥

दूसरोंको सुख पहुँचाना, सुखी करना ही स्वयं सुखी रहनेका उपाय है। ***'जो दोगे वही तो मिलेगा'*** और ***'जैसा बोओगे वैसा काटोगे'*** इन सूक्तियोंके अनुसार दूसरोंको प्रसन्नता, सुख और प्रेम देनेपर ही जीवनमें प्रेम और सुखकी प्राप्ति होती है।

(४) सदैव सन्तुष्ट रहें—गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—**'सन्तुष्टः सततम्'** अर्थात् प्रत्येक परिस्थितिमें निरन्तर सन्तुष्ट रहें। **'सन्तोषः परमं सुखम्'** संतोष ही परम सुख है। हमारे पास जो कुछ है, उसीमें सन्तुष्ट रहें, तभी सुख मिलेगा। दुनियामें बहुत-से लोग हैं, जिनके पास हमसे बहुत कम है। कहा गया है कि संतोष ही सबसे बड़ा सुख है और असंतोष ही सबसे बड़ा दुःख है। ***'जब आवे संतोष धन सब धन धूरि समान'*** अर्थात् संतोष ही सबसे बड़ा धन और सुख है। जिसे अपने परिश्रम और पुरुषार्थसे प्राप्त धनमें संतोष नहीं है, वह हमेशा अशान्त रहता है और **'अशान्तस्य कुतः सुखम्?'** अर्थात् अशान्त व्यक्तिको सुख कहाँ? इसलिये जीवनमें सुखी रहनेके लिये अपनी ईमानदारीकी कमाईमें संतुष्ट रहिये।

(५) धैर्य रखें—हितोपदेशमें कहा गया है—**'विपदि धैर्यम्'** विपत्ति अर्थात् बुरा समय आनेपर धीरज रखें। धीरज (धैर्य) रखनेपर सभी प्रकारकी समस्याओंसे मुक्ति मिल सकती है। धैर्य रखने और सहनशील बननेसे मनुष्य कठिनसे कठिन परिस्थितियोंमें भी हिम्मत नहीं हारता। जीवनमें समस्याएँ तो आती रहती हैं और हमेशा रहेंगी। अगर हम समस्याओंसे डरकर तनावग्रस्त या दुखी रहते हैं तो हमारे जीवनकी शान्ति नष्ट हो जायगी। इसलिये बुरे समयको धैर्यपूर्वक सहन करे और अच्छे समयकी प्रतीक्षा करे।

(६) ईमानदारीसे धन कमाओ और मितव्ययी बनो—कहा गया है कि 'धन जीवनके लिये कमाओ, न कि जीवन धन एकत्र करनेमें गँवा दो'। उक्त सूक्तिका तात्पर्य यही है कि मनुष्यको अपने परिवारके लिये (जीवनकी आवश्यकताओंको पूरा करनेहेतु) धन कमाना आवश्यक है, परंतु धन-संग्रहकी तृष्णामें अपनी एवं परिवारके सदस्योंकी सुख-शान्ति नष्ट न कर दो। धनकी तीन गतियों (दान-भोग और नाश)-में दान सर्वश्रेष्ठ गति है। जो व्यक्ति न स्वयं ही उपभोग करता है, न दान देता है, उसके धनकी तीसरी गति 'नाश' होती है। महाभारतमें कहा गया है कि मनुष्य धनका दास है, परंतु धन किसीका दास नहीं।

'न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः' (कठोपनिषद्) अर्थात् मनुष्यकी तृप्ति धनसे नहीं होती। मनुष्य अधिक धनके संग्रहमें अपना सुख और शान्ति नष्ट कर देता है।

अधिक धन संग्रहके लोभमें खोटे साधनों अर्थात् पापकी कमाई करनेसे भी नहीं चूकता और उसका परिणाम भी दुःखदायी होता है। अतएव ध्यान रहे कि धनका उपार्जन करनेमें और उसका उपयोग करनेमें पवित्रता हो। धन मनुष्यके पास हमेशा एक समान नहीं रहता है। इसलिये धनका सदुपयोग करो। अधिक धन-संग्रहकी तृष्णामें अपनी शान्ति नष्ट न कर दो। अधिक धनको विष और मद भी कहा गया है। इस मदसे बचनेमें ही भलाई है—***'कनक कनक तें सौ गुनी मादकता अधिकाय।'*** अतएव मितव्ययी बनिये, आवश्यकताएँ कम करिये और अपनी आयके अनुसार ही खर्च करिये। आयसे अधिक खर्च करनेकी आदतसे मनुष्यकी सुख-शान्ति नष्ट होती है। बुरे समयके लिये बचत अवश्य करें। जीवनके इस मूलमन्त्रको हमेशा ध्यानमें रखना और पालन करना ही श्रेष्ठ है।

(७) स्वस्थ रहें—शारीरिक और मानसिक रूपसे स्वस्थ रहनेपर ही कोई मनुष्य अपने उत्तरदायित्वको पूरा करते हुए सुखी रह सकता है। शारीरिक और मानसिक रूपसे हमेशा सक्रिय रहिये। प्रातः-सायं भ्रमणका अभ्यास करिये। ऐसा करनेपर अनेक बीमारियों—मधुमेह, रक्तचाप, हृदयरोग, कब्ज आदिसे बचा जा सकता है। तात्पर्य यह कि प्रतिदिन शारीरिक परिश्रम होना आवश्यक है। प्रकृति-प्रेम, भ्रमण, संगीत, बागवानी, खेल, पठन, चित्रकारी आदिमें अपनी रुचिके अनुसार भाग लीजिये। अपनेको व्यस्त रखिये। भोजनमें संयम रखें। घी-तेल, शकर, फास्ट फूडसे बचना भी आवश्यक है। इन पदार्थोंकी अधिकता स्वास्थ्यके लिये घातक है। इन बातोंपर ध्यान देने और इनका पालन करनेपर आप स्वस्थ रह सकते हैं और स्वस्थ रहकर अपने जीवनको सुखमय बना सकते हैं। मानसिक रूपसे स्वस्थ रहनेके लिये क्रोध, चिन्ता, विषाद, तनाव, निराशा, अहंकार आदि दोषोंसे दूर रहें। धार्मिक पुस्तकोंका अध्ययन करें। निरोग रहना पहला सुख माना गया है ***'पहला सुख निरोगी काया।'*** यदि आप धनवान् हैं, करोड़ोंकी सम्पत्तिके स्वामी हैं, परंतु आप अनेक रोगोंसे ग्रसित हैं तो आप सुखी नहीं हैं। इसलिये सदैव स्वस्थ रहिये। अपने स्वास्थ्यपर विशेष ध्यान दीजिये।

(८) आशावादी बनो—हमेशा आशावादी रहना चाहिये। उज्ज्वल भविष्य और अपने लक्ष्यमें सफलता प्राप्त होनेकी कामना करनी चाहिये। आशा जवानीकी प्रतीक है और निराशा बुढ़ापेकी निशानी है। आशावादी पुरुष बीमार होनेपर शीघ्र स्वास्थ्य लाभ प्राप्त करता है। निराश रहनेसे कभी किसीका भला नहीं हुआ। मनसे हमेशा आशावादी और उत्साहपूर्ण बनो। मनको हारने न दो। हमेशा स्मरण रखो ***'मनके हारे हार है मनके जीते जीत'*** मनमें उत्साह रहनेपर कठिन कार्य भी आसानीसे पूरे हो जाते हैं। निराशावादी और उत्साहहीन व्यक्ति आधे-अधूरे मनसे कार्यको करता है तो उसे असफलता ही मिलती है। अपनेको कमजोर और हीन न समझें। अपना मनोबल मजबूत रखें। सदैव आत्म-विश्वास रखें कि आप यह कर सकते हैं। नकारात्मक विचार रखनेवाले मित्रोंसे दूर रहें। हमेशा प्रसन्न रहें।

(९) भूलो और क्षमा कर दो—पारिवारिक जीवनमें परिजनों-मित्रों-सम्बन्धियोंसे कभी-कभी मतभेद भी हो सकता है। मतभेद उत्पन्न होनेपर शान्तिपूर्वक सुलझानेका प्रयास करें। बातचीत बन्द कर देना, तनावमें रहना अच्छा नहीं होता। अप्रिय बातोंको भूलना और क्षमा कर देना सर्वोत्तम नीति है। क्षमा कर देनेपर शान्तिका अनुभव होता है, परस्पर प्रेमकी भावना बढ़ती है। सम्बन्धोंमें निकटता आती है। अपनी गलतियोंपर क्षमा माँगनेमें भी संकोच न करें।

(१०) परोपकारी बनें—दूसरोंकी मदद करनेमें पीछे न रहें। तन-मन-धनसे निर्धन, अपाहिज, रोगीकी यथाशक्ति मदद करें। जरूरतमन्दोंकी मदद करना ही धर्म है। ***'पर हित सरिस धर्म नहिं भाई'*** का पालन करें। स्मरण रखें कि सुख बाँटनेसे सुख बढ़ता है। **'परोपकारः पुण्याय'** (वेदव्यास) परोपकार अर्थात् दूसरोंकी भलाई करना, सुख देना ही पुण्य कार्य है। अतएव पीड़ितोंकी निःस्वार्थ भावसे सेवा करना, सुख पहुँचाना ही सबसे उत्तम पुण्य कार्य है। स्मरण रखिये—

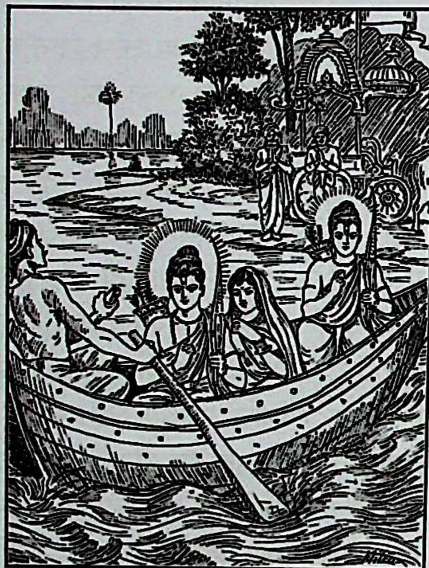
परहित बस जिन्ह के मन माहीं। तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं॥

(रा०च०मा० ३।३१।९)

प्रेमघाटपर केवट

(सौ० रेखा नी० पटवर्धन, एम० ए०)

कभी-कभी भगवान्‌को भी भक्तोंसे काम पड़े।
जाना था गंगापार प्रभु केवट की नाव चढ़े॥



श्रीरामचरितमानस अद्भुत मन्त्रमय प्रासादिक ग्रन्थ है। इस ग्रन्थकी रचना गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने निगमागमसम्मतरूपमें तथा स्वान्तःसुखाय की है। किंबहुना उनकी आत्यन्तिक विनयकी भावना यह है कि यह ग्रन्थ-निर्मिति भगवान् शंकरका उनपर कृपाप्रसाद तथा अनुग्रह है।

प्रथम काण्ड बालकाण्डमें श्रीरामप्रभुके त्रिविधरूपों—निर्गुण-निराकार, सगुण-निराकार तथा अवतारका वर्णन किया है। दशरथ-कौसल्यासुतके रूपमें श्रीरामजीका अवतार मानवीय आदर्श स्थापित करनेके लिये ही है। बालकाण्डमें जैसे उन्होंने आदर्श पुत्र तथा शिष्यकी भूमिका निभायी है, वैसे ही अयोध्याकाण्डमें आदर्श पुत्र, आदर्श भाई, आदर्श पतिके साथ-साथ आदर्श मित्रकी भूमिकाको सर्वोच्च शिखरपर लाकर रखा है। पिता दशरथ और माता कैकेयीके वचनपालनार्थ प्रभु *'तापस बेष बिसेषि उदासी'* बनकर चौदह वर्षके वनवासपर चले हैं। शृंगवेरपुरमें सीतारामजीको तृणशय्यापर सोते हुए देखकर निषादको बहुत ही दुःख हुआ। लेकिन प्रभुप्रेरणासे निषादराज गुहका विषाद लक्ष्मणगीता सुनकर योगमें बदल गया। वह लक्ष्मणगीता सचिव सुमंत और केवटने भी सुन ली थी—ऐसा आगेके केवटप्रसंगके प्रारम्भमें ही प्रतीत होता है। देखिये—

मागी नाव न केवटु आना। कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना॥
(रा०च०मा० २।१००।३)

प्रभुका भक्त होकर भी प्रभुके 'नाव लेकर आओ'—ऐसा कहनेपर भी गोस्वामीजी कहते हैं *'मागी नाव न केवटु आना'* केवट ना कह रहा है तो अतीव प्रेमके कारण। पिछली रातकी लक्ष्मणगीता और सचिव सुमंतजीके गम्भीर प्रसंगोंके कारण आयी हुई गम्भीरता भगाकर प्रभुको अपनी ग्रामीण प्रेमभरी अटपटी भाषासे प्रसन्न करके, प्रभुको हँसनेको बाध्य करनेका केवटका उद्देश्य है। श्रीरामजीका परब्रह्मत्व—यह *'मरमु'* केवटने लक्ष्मणजीके श्रीमुखसे सुना है।

कहा जाता है कि केवट पूर्वजन्ममें क्षीरसागरका एक मेढक था और वह प्रभु नारायणका स्पर्शानुभव चाहता था, लेकिन बार-बार प्रभुके पास पहुँचनेपर शेष भगवान्‌के फूत्कारोंसे घबराकर वह वापस लौट जाता रहा और उसकी वह प्रभुस्पर्शकी प्रेमपूर्ण शुद्ध वासना वैसे ही अपूर्ण रह गयी। इस वासनाके पूरा होनेका समय केवटजन्ममें आ गया है। इसलिये वह छन्दमें स्पष्टरूपेण कहता है कि हे प्रभो! हे नाथ! मुझे आपकी दुहाई और आपके पिताजीकी शपथ (आन) है, भले ही मुझे लक्ष्मणजी बाणसे क्यों न मारें, मैं मरनेके लिये भी तैयार हूँ, लेकिन अब मैं अपना मनःसमाधान होनेतक आपके चरणप्रक्षालन किये बिना आपको अपनी नावमें बैठने नहीं दूँगा। आत्यन्तिक प्रेम-भाव-भक्ति जिसके अन्तःकरणमें पूरी तरह भरी है, वही साक्षात् परब्रह्म जानते हुए श्रीरामजीसे ऐसा कह सकता है। पैर धोनेका कारण भी केवट बता रहा है कि *'छुअत सिला भइ नारि सुहाई। पाहन तें न काठ कठिनाई॥'* केवट कहता है—हे प्रभो, आप दिखते तो मनुष्य हो लेकिन आपकी करनी अमानुष है; क्योंकि आपके चरण नहीं, चरण-रजके स्पर्श होते ही एक शिला 'नारी' तपस्विनी गौतमऋषिपत्नी अहल्या बन गयी। मेरी नाव तो लकड़ीकी यानी पत्थरसे कम कठोर है, आपके स्पर्शसे अगर वह भी कोई नारी, अप्सरा इत्यादि बन गयी तो मैं खाऊँगा क्या? क्योंकि नाव चलानेके सिवा मैं और कुछ भी काम नहीं

जानता। मैं तो अनपढ़ हूँ, दूसरा कोई काम भी नहीं कर सकता और नाव ही न रही तो मैं अपना और अपने परिवारका पेट कैसे भरूँगा? वैसे तो मैं जब दिनभर मजूरी करके नाव चलाता हूँ तो जैसे-तैसे अपना और परिवारका रूखे-सूखेमें गुजारा करता हूँ, लेकिन आपके दिव्य चमत्कारसे नाव ही लुप्त हो गयी और उसपर दूसरी नारी गले पड़ गयी तो मेरा एक पत्नीके साथ निभाना मुश्किल हो रहा है तो दूसरी नारी लेकर मैं क्या करूँगा?

इसलिये मेरी शर्त आपको माननी ही पड़ेगी। मैं आपके पद पखारे बिना अपनी नावमें आपको पैर भी न रखने दूँगा। इन प्रेमभरे शब्दोंसे प्रसन्न होकर प्रभुने कहा—'*बेगि आनु जल पाय पखारू।*' यहाँ स्वयं भगवान् एक भक्तका अनुनय कर रहे हैं—यही भक्तिका प्रभाव है, महत्त्व तथा महत्ता है। इसलिये गोस्वामीजी सिद्धान्तरूपमें कहते हैं—'*राम तें अधिक राम कर दासा॥*'

प्रभुके जिस दाहिने अँगूठेसे श्रीगंगाजी निकली हैं, उसे प्रभुभक्त केवटको कठवतेमेंसे निहारते हुए अति आनन्द हो रहा था। श्रीगंगाजीको प्रभुपदस्पर्शका परम अनुभव पुनः परमानन्द देनेवाला था।

ऐसे आनन्दसे उमड़-उमड़कर केवट और गंगाजी दोनों ही भाव-विभोर हो गये। केवटने अति भावुकतासे और अति कोमलतासे प्रभुके चरणोंका प्रक्षालन प्रदीर्घकालतक किया और जब उसका पूरा मनःसमाधान हुआ तब उसने पहले दो-तीन बार प्रभुचरणोंका तीर्थोदक स्वतः पान किया और पुनः एक बार प्रक्षालन करके उसने अपने पूरे परिवारको उस तीर्थका पान कराया। बादमें अपने पितरोंका स्मरण आते ही उसने पाँचवीं बार पादप्रक्षालन करके उस तीर्थसे पितरोंका तर्पण किया।

यह परोपकारी, निःस्पृहवृत्ति देखकर देवोंको भी स्वर्गमें अपने '*ऊँच निवास नीच करतूती*'—स्वार्थीवृत्तिपर लाज आयी। उन्होंने उसका परिमार्जन और केवटका अभिनन्दन करनेके लिये उसपर स्वर्गसे पुष्पवृष्टि की।

नावमें बिठानेसे पहले ही केवटने प्रभुसे शपथ ली थी कि '*नाथ न उतराई चहौं*' लेकिन प्रभु मानव-आदर्श स्थापित करनेके लिये और धर्मसेतुके स्थापनार्थ 'धर्ममर्यादापुरुषोत्तम' बनकर अवतरित हुए हैं तो अपने कर्तव्य तथा स्वधर्मानुसार केवटको उतराई देनेके उद्देश्यसे केवल सीताजीपर दृष्टिक्षेप करते हैं। प्रेम और विश्वासकी नींवपर जिनका गृहस्थाश्रम खड़ा होता है, ऐसे पति-पत्नी मौनकी भाषासे ही आपसका भाव जान लेते हैं। तुरंत ही सीताजीने अति आनन्दित होकर अपनी रत्नमुद्रिका उतारकर प्रभुके हाथमें रखी। पर जैसे ही प्रभु उतराईके रूपमें केवटको देने लगे तो केवटने प्रभुके पैर पकड़ लिये और कहा—

बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी। आजु दीन्ह बिधि बनि भलि भूरी॥
अब कछु नाथ न चाहिअ मोरें। दीनदयाल अनुग्रह तोरें॥
फिरती बार मोहि जो देबा। सो प्रसादु मैं सिर धरि लेबा॥
(रा०च०मा० २।१०२।६—८)

प्रभो, आज आपके दर्शन-स्पर्श-भाषण और विशेषतः पादप्रक्षालनसे मैंने पूरे जन्मकी मजूरीसे भी बहुत बड़ी कमाई की है। मुझे और कुछ भी नहीं चाहिये। इसपर भी अगर आप देना ही चाहें तो आप जब वनवासकी १४ वर्षकी अवधि पूर्ण करके अयोध्या लौटेंगे तो आप जो देंगे, उसे मैं प्रसाद समझकर प्रसन्नतासे स्वीकार करूँगा।

ऐसा चतुर भक्त केवट है, भले ही वह अनपढ़ हो। किसी भले आदमीपर यदि किसीका ऋण हो, तो उसे बार-बार देनेका स्मरण रहता ही है—इस न्यायसे प्रभु मेरा बार-बार स्मरण करेंगे और दुबारा उनके दर्शन-स्पर्श और भाषणका मैं पूरा-पूरा लाभ उठाऊँगा—ऐसा केवटका अति सुन्दर भाव है।

लेकिन प्रभु किसीके ऋणको रखना पसन्द नहीं करते; क्योंकि इससे उनके आदर्श तथा धर्ममर्यादापुरुषोत्तमत्वमें कमी आ जाती। और वैसे भी प्रभु अति दयालु, करुणालु, कृपालु तथा भक्तवत्सल होनेके स्वभावके कारण निःस्पृह भक्तको वह कुछ-न-कुछ दिये बिना तटस्थ नहीं होंगे।

जो भक्ति माँगनेपर भी झटसे किसीको नहीं देते, या तो जीवमें भक्ति माँगनेकी प्रेरणा ही नहीं देते, ऐसे प्रभु श्रीरामने बिना माँगे केवटको विमल भक्तिका तत्काल वरदान देकर उसपर अपार करुणा बरसायी। प्रभु किसीका उधार नहीं रखते, रोकड़ेमें दे देते हैं।

निष्काम भाव-भक्ति ही प्रभुप्रेम तथा प्रभुदर्शन-स्पर्श-भाषणकी प्राप्ति करा देती है। इसी भक्तिको निर्भरा, विमला तथा अनपायिनी या ज्ञानेश्वरजी अव्यभिचारिणी भक्ति कहते हैं। यही अनन्य भक्ति है। भक्तके मनमें भगवान्‌के अतिरिक्त दूसरा विचार ही न आये, यही अनन्य भक्ति है।

धर्ममय रथ

(स्वामी श्रीकेशवानन्दजी महाराज)

वैदिक शास्त्रानुसार युग चार बताये गये हैं— कृतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग। कृतयुगमें धर्मकी प्रधानता थी। उस समय राजा हरिश्चन्द्रने अपने वचनरक्षार्थ अपना सर्वस्व बिना युद्ध किये ही दान कर दिया था। त्रेतामें धर्मकी स्थापनाके लिये मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् राम इस अवनीतलपर अवतरित हुए। उन्होंने बाल्यकालमें ही महर्षि विश्वामित्रसे अस्त्र-शस्त्र-संचालनकी विद्या प्राप्त की और उसमें परम प्रवीण हो गये थे। वनवासकालमें जब माता जानकीका राक्षसराज रावणद्वारा अपहरण किया गया, तब उनकी मुक्तिके लिये भगवान् रामने वानरोंकी सेना लेकर लंकापर चढ़ाई कर दी। कई दिवसतक युद्ध होता रहा। अनेकों राक्षस योद्धा मारे गये। यहाँतक कि मेघनाद और कुम्भकर्ण भी मारे गये, तब अन्तमें लड़ाईके मैदानमें रावण स्वयं युद्धास्त्र लेकर भगवान् रामके सामने उपस्थित हुआ।

उस समय भगवान् राम पैदल थे और उनके पैरमें चरणपादुकाएँ भी नहीं थीं। यह देखकर विभीषण चिन्तित होकर कहने लगे—

नाथ न रथ नहिं तन पद त्राना। केहि बिधि जितब बीर बलवाना॥

(रा०च०मा० ६।८०।३)

यह सुनकर भगवान् श्रीरामने विभीषणसे कहा—

सुनहु सखा कह कृपानिधाना। जेहिं जय होइ सो स्यंदन आना॥

(रा०च०मा० ६।८०।४)

कृपानिधान रामजीने कहा—'हे मित्र! सुनो, जिससे जीत होती है, वह दूसरा ही रथ है। उस धर्ममय रथका वर्णन भगवान्ने इस प्रकार किया—

सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका॥
बल बिबेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे॥
ईस भजनु सारथी सुजाना। बिरति चर्म संतोष कृपाना॥
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। बर बिग्यान कठिन कोदंडा॥
अमल अचल मन त्रोन समाना। सम जम नियम सिलीमुख नाना॥
कवच अभेद बिप्र गुर पूजा। एहि सम बिजय उपाय न दूजा॥
सखा धर्ममय अस रथ जाकें। जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताकें॥

(रा०च०मा० ६।८०।५—११)

'मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् रामने विभीषणसे जिस रथका वर्णन किया है, वह भौतिक युद्धका रथ नहीं, आध्यात्मिक युद्धका रथ है, जिसमें शूरता और धीरतारूपी पहिये लगे हैं। सत्यता मजबूत ध्वजा और शीलता पताका है। बल, विवेक, दम (इन्द्रियोंका वशमें होना) और परोपकार—ये चार उसके घोड़े हैं; जो क्षमा, कृपा और समताकी रस्सीसे बँधे हैं। ईश्वरका भजन ही अति चतुर सारथी है। वैराग्य ढाल और सन्तोष तलवार है। दान फरसा, ज्ञान तेज बरछी और श्रेष्ठ विज्ञान कठिन धनुष है। निर्मल और स्थिर मन तरकश है, जिसमें शम, यम, नियम आदि अनेक प्रकारके तीर हैं। ब्राह्मण और गुरुकी पूजा अभेद्य कवच हैं।'

धर्ममय रथका विवेचन करनेके अनन्तर भगवान् रामने विभीषणको बतलाया कि हे सखे! ऐसा रथ जिसके पास हो, वह संसाररूपी समरमें सदा अजेय रहता है। अर्थात् शम-दम एवं इन्द्रियनिग्रहद्वारा सबको जीता जा सकता है। इस सम्बन्धमें कुछ द्रष्टान्त प्रस्तुत हैं—

(१)

धनुर्धर वीर अर्जुनके शौर्य और वीरताकी चर्चा इन्द्रलोकमें सदा हुआ करती थी; क्योंकि अर्जुन इन्द्रका पुत्र था। एक बार अर्जुन इन्द्रलोक गये। इन्द्रपुरीमें मनोरंजनार्थ अप्सराओंका नृत्य हुआ करता था। उर्वशी नृत्य कर रही थी। वह अर्जुनको देखकर मन-ही-मन बहुत आकर्षित हो गयी। नृत्य समाप्त हुआ। सभी अपने-अपने शयन-कक्षमें चले गये। अर्जुनने भी अपने शयन-कक्षमें जाकर अन्दरसे दरवाजा बन्द कर लिया। कुछ देरमें दरवाजा खट-खटानेकी आवाज आयी। अर्जुनने पूछा—'कौन?' उत्तरमें 'मैं उर्वशी हूँ' सुनकर अर्जुनने दरवाजा खोला और पूछा—'माता! इतनी देर रात्रिमें यहाँ आनेका क्या प्रयोजन है?' उर्वशीने अपने मनोभाव व्यक्त किये।

अर्जुनने हाथ जोड़कर कहा—आप हमारे वंशकी जननी हैं। जैसे कुन्ती, माद्री और शची मेरी माता हैं,

वैसे ही आप भी मेरी माता हैं।

उर्वशी अपनी मनोकामना पूर्ण नहीं होनेसे अतिक्रोधित हो गयी और बोली—'तुम पुरुष होकर नपुंसककी तरह बातें करते हो, जाओ एक वर्षपर्यन्त नपुंसक ही रहोगे।'

पाण्डवोंके अज्ञातवासकालमें अर्जुन राजा विराटके अन्तःपुरमें राजकुमारीको नृत्य सिखाते थे। वह एक वर्षपर्यन्त नपुंसकताका शाप उनके लिये वरदान बनकर आया और उस वेषमें उन्हें कोई पहचान न सका।

सन्त सद्गुरु महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं—

'सतव्रतमें दृढ़ आप हो, कोई शाप क्या करे।'

अर्जुन सत्यमें प्रतिष्ठित थे। इसलिये उर्वशीका शाप वरदान बन गया।

(२)

एकबार देवताओं और दानवोंमें युद्ध हुआ। देवता लोग पराजित हो गये। अलकापुरीपर असुरोंका राज्य हो गया। सभी देवता कन्दराओंमें छिप गये। सभी देवताओंको अतिशय दुखी देखकर इन्द्रने अपने गुरु बृहस्पतिसे इन दुःखोंसे छूटनेका उपाय पूछा। देवगुरुने गुरु शुक्राचार्यके पास जानेको कहा। इन्द्रने शुक्राचार्यके पास जाकर साष्टांग नमन किया और इन दुःखोंसे छूटनेका उपाय पूछा। गुरु शुक्राचार्यने कहा कि आप छद्म वेशमें प्रह्लादकी सेवा कीजिये। वे जब आपकी सेवासे प्रसन्न हो जायँ और कुछ माँगनेको कहें तो आप उनसे उनका शील माँग लीजियेगा।

इन्द्रने वैसा ही किया। बहुत दिनोंतक सेवा करनेके बाद एक दिन प्रह्लादने कहा—'मैं आपकी सेवासे बहुत प्रसन्न हूँ। वरदान माँगो।' तब इन्द्रने कहा—'यदि आप हमपर प्रसन्न हैं तो अपनी शीलता हमें दे दीजिये।' इतना सुननेपर प्रह्लाद बोले—'मैं समझ गया, आप इन्द्र हैं। अपना राज्य वापस ले लीजिये।' यह शीलका प्रभाव है धर्म, सत्य, सदाचार, बल और लक्ष्मी—ये सब शीलके ही आधारपर रहते हैं। शील ही इनका मूल है। शीलके बलपर त्रिलोकीमें विजय प्राप्त होती है।

प्रश्न उठता है कि हमारी इन्द्रियाँ, जो विषयोंकी आनन्द वाटिकामें अहर्निश अतिशय चपल गतिसे चलायमान हैं, वे कैसे रुकेंगी?

श्रीमद्भगवद्गीतामें श्रीकृष्णसे अर्जुनने पूछा—हे महाबाहो! मन अतिशय चंचल है। इसको वशमें करना असम्भव-सा लगता है। इसपर श्रीकृष्णभगवान् बताते हैं कि यह मन वास्तवमें बड़ा चंचल है, लेकिन अभ्यास और वैराग्यके द्वारा इसे वशमें किया जा सकता है।

मनोनिग्रह या मनको रोके बिना कोई इन्द्रिय नहीं रुक सकती है। मनोनिग्रहको ही योग कहते हैं। चित्तकी वृतिका निरोध करना ही मनोनिग्रह है। यम-नियम आदि मनोनिग्रहके प्रथम सोपान हैं।

यम पाँच हैं—१. सत्य, २. अहिंसा, ३. अस्तेय (चोरी नहीं करना), ४. ब्रह्मचर्य और ५. अपरिग्रह।

नियम भी पाँच हैं—१. शौच, २. सन्तोष, ३. तप, ४. स्वाध्याय और ५. ईश्वर-प्रणिधान।

भगवान् रामके धर्मरथके ये ही यम और नियम अति तेज बरछी हैं, जिनके बलपर काम-क्रोधादि शत्रुओंको सहज ही जीता जा सकता है।

कठोपनिषद्में लिखा है—

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥

(१।३।६)

शरीर रथ है, आत्मा रथी है, दस इन्द्रियाँ घोड़े हैं और मन लगाम है अर्थात् जबतक बाहरकी दसों इन्द्रियाँ बहिर्मुखी रहती हैं, जीवात्माकी वृत्ति दशमुख रावणकी-सी तमोगुणी बनी रहती है। दसों इन्द्रियोंकी चेतन धाराओंको समेटकर आज्ञाचक्रमें केन्द्रित करनेवाला अर्थात् स्थिर होनेवाला साधक दशरथ बन जाता है, फिर तो उसके उर-मन्दिर (गृह)-में रामका अवतार स्वाभाविक हो जाता है। सन्तोंने इस आध्यात्मिक युद्धके लिये जन-साधारणको प्रेरित किया है। भगवान् रामने भी विभीषणको यही प्रेरणा देते हुए अन्तमें कहा कि हे विभीषण! इस प्रकारके रथसे मनुष्य महान् अजेय शत्रुको भी जीत सकता है—

महा अजय संसार रिपु जीति सकइ सो बीर।
जाकें अस रथ होइ दृढ़ सुनहु सखा मतिधीर॥

(रा०च०मा० ६।८०क)

आध्यात्मिक यात्रा

(श्रीराजेन्द्रप्रसादजी द्विवेदी)

वर्तमान परिदृश्य—आजके घोर भौतिक एवं उपयोगितावादी युगमें सुख-शान्तिकी खोजमें निरन्तर भटकते हुए मानवकी दशा उस तृषित मृगके सदृश है, जो मध्याह्नमें तपते हुए सूर्यकी ऊष्मामें दिखनेवाली लहरोंको वास्तविक जल समझकर उसकी प्राप्तिहेतु अविराम भटकता रहता है, किंतु उसकी अन्तहीन खोजकी परिणति निराशा एवं दुःखमें ही होती है। बहिर्मुखी मनुष्य बाह्य जगत्के सुखोपयोगी उपकरणों तथा सुख-सुविधाके विलासितापूर्ण साधनोंको ही सुख-शान्तिका स्रोत मानकर उनके उपभोगमें ही अपने जीवनका बहुमूल्य समय नष्ट कर देता है, किंतु फिर भी उसकी कामनाओंकी तृप्ति नहीं हो पाती। एक कामनाकी पूर्ति दूसरी तथा अधिक बलवती कामनाओंका द्वार खोल देती है तथा उसकी प्राप्तिकी उत्कट अभिलाषा निरन्तर बढ़ती जाती है।

मानवमन संकल्प-विकल्पमय है। उसमें निरन्तर किसी-न-किसी कामनाका उठना स्वाभाविक है। उसका मस्तिष्क प्रायः स्थिर नहीं रहता, किंतु यदि उसका चंचल मन तथा बुद्धि आन्तरिक, आध्यात्मिक प्याससे परिचालित हो तो उसे प्रसन्नता तथा शान्तिकी अनुभूति हो सकती है। वास्तवमें मनुष्य जिसे खोजता है, वही वह स्वयं है। वह जिस निरतिशय आनन्द एवं चिरशान्तिको खोजता है, वह तो उसके भीतर ही निहित है।

अध्यात्मका अर्थ—भारतीय संस्कृतिमें निरुक्तिके अनुसार अध्यात्मका अर्थ है—'आत्मनि'+'अधि' अर्थात् अपने (शरीर)-के भीतर। तात्पर्य यह है कि शरीरके भीतरकी इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार विभिन्न मनोयोगों तथा वृत्तियों इत्यादिके घात-संघात तथा आत्मा एवं परमात्मा सभीको अध्यात्म-सम्बन्धी अथवा आध्यात्मिक कहा जाता है। अतः अध्यात्म शरीरके अन्तरंगतम तत्त्व अथवा आत्माका बोध प्राप्तकर प्रत्यगात्मा अथवा परमात्मातक पहुँचनेका साधन है। गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने स्वभावको ही अध्यात्म कहा है—**'स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते।'** (गीता ८।३)

आदि शंकराचार्यके अनुसार यहाँ स्वभावका अर्थ है—आत्मा अर्थात् शरीरको आश्रय बनाकर उसमें रहनेवाला तत्त्व, जो परमार्थतः ब्रह्म ही है।

श्रीरामानुजाचार्यके अनुसार प्रकृति ही स्वभाव है; वह अनात्मभूत, किंतु आत्मासे सम्बद्ध सूक्ष्मभूत और उसकी वासना आदिका द्योतक है। अध्यात्म परोक्ष है; आत्मा उसका साक्षी है; साक्षात् अपरोक्षतत्त्व है। श्रीमद्भागवतमें परमात्मतत्त्वके अन्तर्गत ब्रह्मको ज्योतिःस्वरूप मानकर बुद्धिके प्रकाशकके रूपमें अध्यात्मदीपकी संज्ञासे विभूषित किया गया है। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार घरका दीपक घरके घट, पट आदि सभी वस्तुओंको प्रकाशित करता हुआ स्वयं प्रकाशवान् बना रहता है, उसी प्रकार परमात्मतत्त्व भी अध्यात्मदीप है, जो प्रत्येक जीव या प्राणीके अपने आपमें ही गृहदीपके समान प्रकाशित हो रहा है। ऐसी स्थितिमें अपने घरमें ही प्रज्वलित दीपकको बाह्य जगत्में खोजना कहाँकी बुद्धिमानी है? मनुष्य तो स्वयं अध्यात्म-दीप है, जो स्वयं अपनेको तथा अधिष्ठाता बनकर सभी पदार्थोंको सतत प्रकाशित कर रहा है। उसकी पहचान अथवा अनुभूति अध्यात्मदीपनरूप धर्मसे होती है। अतः अपने कल्याणके लिये हमें अध्यात्मवित् या आत्मवित् अर्थात् अपने भीतरके जटिल यन्त्र (पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ अर्थात् दस बाह्य करण तथा चार अन्तःकरण कुल मिलाकर चौदह)-के संचालन एवं कार्य-कलापोंका समुचित ज्ञाता होना चाहिये।

वस्तुतः आध्यात्मिकताका अर्थ मात्र भौतिकवादका विरोध नहीं है, वरन् उसका आशय है—सच्ची आस्तिकता। आस्तिकताका अर्थ है—दृढ़ ईश्वर-विश्वास और ईश्वर-विश्वाससे हमारा आशय है—एक ऐसी न्यायकारी सर्वोपरि सत्ताके अस्तित्वको स्वीकार करना, जो सर्वव्यापी है तथा कर्मफलके अनुसार हमारे सम्पूर्ण जीवनका संचालन करती है। मनुष्य ईश्वरका पुत्र है तथा उसमें अपने पिताकी अधिकांश विभूतियाँ बीजरूपमें विद्यमान हैं। अतएव शास्त्रोक्त विधिसे हमें अपने सत्स्वरूपका

बोध प्राप्तकर ईश्वरीय विधि-व्यवस्थाका यथाशक्ति पालन करना चाहिये।

अध्यात्मके अन्वेषणमें सबसे बड़ी बाधा है देहात्मबुद्धि अर्थात् भौतिक शरीरको ही आत्मा समझ बैठना। वास्तवमें आत्मा और शरीर सर्वथा पृथक् हैं। हमने 'स्वयं' को आत्मतत्त्वसे पूर्णतया अलगकर शरीरको ही अपना वास्तविक स्वरूप मान लिया है। इसी कारण हम आत्मोन्मुख न होकर बहिर्मुख बनकर भौतिक तथा निरन्तर परिवर्तनशील एवं नाशवान् संसाधनोंकी उपलब्धिमें ही निरन्तर रत रहते हैं। यथार्थतः सच्चे सुख एवं शान्तिका स्रोत हमारे भीतर ही विद्यमान है। अतएव चंचल मनकी निरन्तर उठती हुई आकांक्षाओंको लुभावने जगत्से हटाकर उसे अहंकार एवं राग-द्वेष आदि विकारोंसे मुक्तकर, सतत अभ्यासद्वारा निर्विकार बनाकर आन्तरिक यात्राकी ओर उन्मुख करना है। असंख्य वृत्तियोंको शान्तकर मनको वृत्तिशून्य तथा अकाम बनाना आत्मतत्त्वकी जागृति है। ऐसा करनेके लिये 'प्रत्याहार' तथा 'धारणा' अपेक्षित है। 'प्रत्याहार' द्वारा इन्द्रियोंके पीछे भटकनेवाले मनको खींच लेना तथा अन्तर्मुखी बनाकर उसे कार्य-जगत्से अलग करना है। तत्पश्चात् बुद्धि-विवेकद्वारा उसे किसी उपयुक्त, वांछित बिन्दुपर केन्द्रित करना 'धारणा' है। अतएव विकाररहित, परिशुद्ध मनको आत्मस्थ करना ही मनुष्यकी आन्तरिक एवं आध्यात्मिक यात्रा है। तभी तो हमारे वैदिक ऋषियोंने मनके शुभ संकल्पोंसे युक्त होनेकी मंगल कामना की है, यथा—**'तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।'**

वास्तवमें सीमित जीव निस्सीम ब्रह्मका ही अभिन्न अंश है। यथार्थमें वह ब्रह्म ही है, किंतु अविद्या, अज्ञान, अहंकार तथा मायासे पूर्णतया आच्छादित होनेके कारण वह अविनाशी परमात्माको नहीं जान पाता। जीव और ब्रह्मके बीच माया-मोहका जो परदा पड़ा हुआ है, उसीके कारण जीवको ब्रह्मका दर्शन नहीं हो पाता। अविद्या एवं अज्ञानजनित मायाके ही कारण जीवको अपने वास्तविक स्वरूपकी विस्मृति हो गयी है, जिसके फलस्वरूप वह जीव-भाव अथवा देहात्मबुद्धिमें स्थित हो गया है। जीव-भावसे पूर्णतया मुक्त होकर अपने स्वाभाविक सत्स्वरूपको पहचानना ही आत्मसाक्षात्कार करना या ब्रह्म-भावमें स्थित हो जाना है। इस प्रक्रियामें जैसे पानीकी छोटी-सी बूँद समुद्रमें मिलकर अपने क्षुद्र अस्तित्वको मिटाकर विशाल समुद्र ही हो जाती है, उसी प्रकार सच्चा आत्मान्वेषक अपने सीमित अहंता-ममता भावको परमात्मामें अर्पितकर ब्राह्मी स्थितिको प्राप्त हो जाता है। मुण्डकोपनिषद्में कहा गया है कि ज्ञानी अपने नाम-रूपका पूर्णतया लय करके पुरुषोत्तम परमात्माको प्राप्त हो जाता है—**'यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय। तथा विद्वान् नामरूपाद् विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्॥'** (मु० ३।२।८) अर्थात् जैसे बहती हुई नदियाँ अपना नाम-रूप छोड़कर समुद्रमें विलीन हो जाती हैं, वैसे ही ज्ञानी नाम-रूपसे रहित होकर परमात्मामें लीन हो जाता है।

भगवान् कृष्णने कहा है कि जीव ब्रह्मका अविच्छिन्न अंग (अंश) है—**'ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।'** (गीता १५।७) अतः आत्मसाक्षात्कारद्वारा ब्रह्मको जान लेना ही मानव-जीवनका परम उद्देश्य होना चाहिये।

वास्तवमें सम्पूर्ण आध्यात्मिक साधनाका प्रारम्भ आत्मानुसन्धानमें तथा उसकी परिणति आत्मसाक्षात्कारद्वारा परमात्माकी प्राप्ति है, सर्वोच्च ब्राह्मी स्थितिकी अनुभूति है, जिसे हम परमगति, महायोग, निर्वाण अथवा मोक्ष कहते हैं। आध्यात्मिक साधनाकी पराकाष्ठापर पहुँचकर सर्वोच्च सोपानपर आरूढ़ होकर साधक कह उठता है—**'शिवोऽहम्', 'अहं ब्रह्मास्मि'** और ऐसी स्थितिकी प्राप्ति ही मानव-जीवनका चरम तथा परम लक्ष्य है।

उपसंहार—सतत अभ्यासद्वारा कुप्रवृत्तियोंपर विजय प्राप्तकर शुद्ध चित्तसे आत्मदेशकी ओर अग्रसर होना आध्यात्मिक उत्थानका सुदृढ़ सोपान है। आत्मानुसन्धानद्वारा अपने स्वाभाविक सत्स्वरूपका साक्षात्कार करना ही ब्राह्मी स्थिति प्राप्त करना है, जिसके फलस्वरूप व्यक्ति पूर्णतया कृतकृत्य हो जाता है। इस उदात्त स्थितिको पराभक्ति भी कहा गया है—**'स्वस्वरूपानुसन्धानं भक्तिरित्यभिधीयते।'** (विवेक-चूड़ामणि ३२)

कहानी—

नवधा भक्ति—छलहीन सरल

'नवम सरल सब सन छलहीना। मम भरोस हियँ हरष न दीना॥'

(श्री 'चक्र')

(१)

'कायरोंकी भाँति दुबककर रात्रिमें आक्रमण मुझसे न होगा। दिनमें जहाँ कहोगे, चला जाऊँगा!' उसके स्वरमें दृढ़ प्रतिरोध था।

पास ही शत्रुकी एक टुकड़ीका पता लगा था। कैप्टनने सूबेदार धीरसिंहको अपनी टुकड़ीके साथ चुपचाप उसपर आक्रमण करनेकी आज्ञा दी थी। अमावस्याकी रात्रि थी और हवा जोरसे चल रही थी। रेतका तूफान कहीं कुछ देखने नहीं देता था। कैम्प हिल रहे थे और उनपर मानो रेत पड़ रही थी। उनके चारों ओर तो नहीं, जिधरकी हवा थी, उधर रेतका टीला बन गया था।

'यहाँसे सीधे उत्तर एक मील, वहाँ एक बन्द लैम्प है, धीरेसे एक लाल किरण इसी ओर निकल रही है। उससे कुछ छः सौ गज पश्चिम। तूफानमें आहट नहीं मिलेगी।' धीरसिंहको तेज टार्च और स्थल-निर्देश मिल गया था।

'तुम जानते हो कि यह आज्ञोल्लंघन है और वह भी फील्डपर!' धीरसिंहने उसे धमकाया।

'वह जानता हूँ! कोर्टमार्शल और गोलीसे डरकर यह अधर्म मैं नहीं करूँगा। इस आँधी-तूफानमें जान बचाकर छिपे मानवपर मेरे हाथ नहीं उठेंगे! मैं क्षत्रिय हूँ और धर्मयुद्ध करना जानता हूँ। कल सबेरे मेरे हाथ देख लेना!' वह भीत नहीं हुआ।

'आजका धर्मयुद्ध पुराने धर्मयुद्धसे भिन्न है! देखते नहीं हो कि हम सब सोते रहते हैं तो वह अग्नि-वर्षा करता है!' वह बलवन्तसिंहको बहुत मानता है। एक ही गाँवके हैं, सूबेदार हो गये तो क्या? फिर बलवन्त सीधा भी तो हदसे ज्यादा है।

'वे पाप करते हैं तो मैं क्यों करूँ? कल सबेरे मेरी राइफल उठेगी।' यह तो सेनापति भी जानते हैं कि बलवन्तसिंह-जैसा निशाना उनकी सेनामें और किसीका है नहीं।

'तुम तो व्यर्थ ही फौजमें आये! वहीं घरपर ही हनुमान्‌जीको रामायण सुनाते रहना था तुम्हें!' सच्ची बात तो यह है कि धीरसिंहने ही उस सरल ग्रामीणको फौजमें उकसाकर भर्ती कर दिया था।

'व्यर्थ क्यों आया? युद्ध करना क्षत्रियोंका धर्म है, इसीसे युद्ध करने आया हूँ, पर अधर्मयुद्ध मुझसे नहीं होगा। हनुमान्‌जी तो सब कहीं रहते हैं। मेरे सदा साथ हैं। उन्हें रामायण भी मैं नित्य सुनाता ही हूँ।' पाँच दोहे रामायण-पाठ कम-से-कम वह अवश्य कर लेता है। छोटा-सा श्रीरामचरितमानसका गुटका उसका उसके साथ ही रहता है।

'क्यों मुझे आफतमें डालते हो? कोर्टमार्शल हो जायगा और शायद...! सूबेदारने बड़ी नम्रतासे समझाया।'

'मैं सजाके भयसे पाप नहीं करूँगा। मार तो मुझे कोई सकता नहीं। मरूँगा तो श्रीअयोध्याजीमें हनुमानगढ़ीके भीतर उन पवनकुमारके चरणोंपर मस्तक रखकर। उनके होते यहाँ कौन मुझे मार सकता है!' सूबेदारने देख लिया कि वह टस-से-मस होनेवाला है नहीं।

'तुम्हें कैम्प ड्यूटी दी जाती है!' थोड़ी देर सोचकर धीरसिंहने कहा। वे नहीं चाहते कि उनके द्वारा बलवन्त कोर्टमार्शल सुपुर्द हो। 'सावधान रहना!' इसे माननेमें उसे आपत्ति नहीं थी।

शत्रु सम्भवतः इन लोगोंसे भी अधिक सावधान था। इस टुकड़ीके प्रयाणके पूर्व ही उसने छापा मारा। जमकर युद्ध हुआ। अपनी मदद पीछे दूर थी और उसकी टुकड़ियाँ बढ़ती जाती थीं। अन्ततः कमाण्डरने पीछे हटनेका हुक्म दे दिया। जो कुछ हटते समय ले जाया

जा सकता था, लेकर और शेष कैम्प आदिमें अग्नि लगाकर सेना पिछली पंक्तिपर हट गयी।

(२)

'हम तुम्हें इनाम देंगे और जो कुछ चाहोगे, कर देंगे! तुम्हें छोड़ दिया जायगा और तुम अपने साथियोंसे मिल सकोगे! तुम्हें सोना मिलेगा—बहुत-सा सोना!' दुभाषियेने सेनापतिकी बात उसे समझा दी। हथकड़ी खोल दी गयी थी और रस्सी भी। केवल दो सैनिक संगीन चढ़ाये पीछे खड़े थे। वह युद्धमें पीछे नहीं भागा था, इसीसे जर्मनोंने गिरफ्तार कर लिया था उसे। मस्तकपर पट्टी बँधी थी। वहाँ संगीनकी गहरी मार लगनेसे ही तो वह मूर्छित होकर गिर पड़ा था। नहीं तो उसकी रायफल कितनोंको सुला चुकी थी।

'राजपूत झूठ नहीं बोलते और विश्वासघात नहीं करते!' उसने थोड़ेमें दोनों बातें बता दीं।

'ठीक है, हम जो पूछें तुम सच बता दो! तुम्हें बहुत बड़ा इनाम मिलेगा!' जर्मन सेनापति भारतीय रक्तको क्या पहचाने?

मुझे न इनामका लोभ है और न दण्डका भय! मेरे विषयमें तुम जो पूछो, बता दूँगा, पर अपनी सेनाके विषयमें मैं कुछ भी नहीं बता सकूँगा! उसने स्पष्ट किया।

'तुम पीछे लौटते तो रहनेके लिये खाई मिलती या कैम्प?' सेनापतिने छलसे पूछा।

'मेरे घर लौटनेपर मुझे एक खपरैलका मकान मिलेगा। अम्मा हैं, छोटा भाई है, चाचाजी हैं!' वह और जाने क्या-क्या बतानेवाला था।

'हम फील्डकी बात पूछता है!' सेनापतिने रोका।

'फील्डकी बात तो मैं बता नहीं सकता। यह मैंने पहले ही निवेदन कर दिया।' उसने शान्त उत्तर दिया।

'तो अपनी ही बात बताओ तुम! तुम्हारी टुकड़ीमेंसे कितने सिपाही पीछे भाग गये?' सेनापति महाधूर्त था। उसने वाग्जालमें फँसाना चाहा।

'फायर कर रहा था, मुझे पता नहीं कितने पीछे गये और कितने मरे! यदि पता भी होता तो बताता नहीं। फौज-सम्बन्धी कुछ भी आप मुझसे जान नहीं सकेंगे!' उसने टका-सा जवाब दे दिया।

'तोपसे उड़ा देगा!' चिल्लाया सेनापति।

'हो नहीं सकता! खैर, तुम्हारे जो मनमें आवे सो करो।' वह अविचल था।

उसे मारनेके लिये पिस्तौल पर्याप्त थी। संगीनसे बिना कारतूस खर्च किये काम चल जाता; पर उसे पेड़से बाँधा गया और एक दस इंची तोप उसके सामने थोड़ी दूरपर लगा दी गयी। पता नहीं उजड्डु सेनापति अपनी बात सच कह रहा था या उसे केवल भयभीत करना चाहता था।

उससे फिर पूछा गया; पर उसने साफ इनकार कर दिया। 'तुम लोग अपना काम करो! श्रीमहावीरजी अपना काम करेंगे! मैं इस मजेदार तमाशेको आनन्दसे देखूँगा!' सेनापतिने समझा वह पागल हो गया है। झुँझलाकर उसने तोपचीको तोपमें गोला देनेका आर्डर दिया।

'धड़ाम!' तोपचीके चिथड़े उड़ गये तोपके साथ ही। सेनापति भागा सिरपर पैर रखकर। 'शत्रुके जहाज!' भगदड़ और चीख-पुकार मच गयी। अलार्म बजने लगा। उनके कैम्पपर सन्ध्याके झुटपुटेमें मित्रोंके हवाई जहाज चढ़ आये थे।

धू-धू करते वस्त्रोंके कैम्प जलने लगे। बारूदखानेको एक बमने उड़ा दिया। हवाई जहाजतोड़क एक ही तोप थी, वह भी दक्षिणा पाकर मूक हो गयी। इस आफतसे सम्हलनेका अवसर मिला नहीं था, तबतक दैत्याकार लारियोंसे 'हर हर महादेव!' और 'सत् श्री अकाल!' की ध्वनि करते राइफल चढ़ाये राजपूत और सिक्ख कूदने लगे।

बहुत-सा सामान हाथ लगा। कई सौ जर्मन और इटालियन सैनिक बन्दी बनाये गये। भयके कारण बिना

युद्ध किये उन्होंने हथियार डाल दिये थे।

(३)

'तुम्हें शत्रुने क्यों बाँधा था?'

'कैम्पका भेद न बतलानेके कारण।'

'तुम गिरफ्तार कैसे हुए?'

'फायर करते समय एकने सिरमें संगीन मार दी। मूर्छित था।'

'पीछे लौटनेका आर्डर नहीं सुना तुमने?'

'सुना था, पर राजपूत पीछे नहीं हटता!'

'क्या यह सच है कि तुमने उस रात्रिको छापा मारनेवाली टुकड़ीमें जाना अस्वीकार कर दिया था?'

'सच है। सोते और असावधान शत्रुपर आक्रमण करना कायरता है। इससे तो मर जाना अच्छा।'

उसे सूबेदारने बहुत समझाया था कि पीछे लौटनेकी सूचना पाने और रात्रिको छापा मारनेमें सम्मिलित न होनेकी बातको वह अस्वीकार कर दे; पर उसे झूठ बोलना नहीं था। वह झूठ और छल नहीं करना चाहता।

'तुमने आज्ञा भंग की है!' कोर्टने कहा। वह चुप रहा। 'फिर भी तुम्हारी सच्चाई और उस बहादुरीपर जो तुमने शत्रुके हाथमें पड़नेपर दिखायी है, कोर्ट तुम्हें माफ करती है। तुम फौजी कामके हो नहीं। तुमको छुट्टी मिलनी चाहिये!' सचमुच उसे तीसरे दिन घर लौटनेका पास मिल गया। वह फौजसे निकाल दिया गया था।

यहीं कुशल नहीं हुई। एक फौजी भगोड़ेने रास्तेमें उससे परिचय कर लिया और अवसर पाते ही पास झटक ले गया। फलतः कराचीमें जहाजसे ही वह गिरफ्तार कर लिया गया। जाँच हुई, लिखा-पढ़ी प्रारम्भ हुई और अन्तमें वह भगोड़ा गिरफ्तार हुआ। बलवन्त-सिंहको छुट्टी मिली कारागारसे पूरे तीन महीने पश्चात्।

(४)

'तुम्हारे यहाँ कोई राजरोगी तो नहीं था?' पता नहीं क्यों बाबा राघवदास ऐसे लोगोंको शिष्य नहीं बनाते थे और बलवन्तसिंहको यह पता था।

'मेरी माताको सफेद कुष्ठ है और पितामहीको भी था!' उसे छल करना बिलकुल नहीं आता। 'पर मेरे घर पुरुषोंको यह रोग कभी नहीं हुआ!' यही उसकी आशा थी।

'छुआछूतका तुम्हारे यहाँ ध्यान तो रखा जाता है?'

'घरमें तो पूरा ध्यान रखा जाता है, पर' बाबाजीको ज्ञात नहीं कि वह फौजमें रह चुका है।

'पर क्या?' बाबाजीने संदिग्ध स्वरमें पूछा।

'मैं फौजमें था और अभी ही मुझे छुट्टी मिली है?' उसने धीरे-धीरे सब कुछ समझा दिया।

'फिर मेरे पास क्यों आये? म्लेच्छों और यवनोंका छुआ खाकर फिर वैष्णव बनने चले हो?' बाबाजीने घृणासे देखा।

'मैंने कुछ भी अखाद्य नहीं खाया है और छुआछूतके लिये तो युद्धभूमिमें कुछ आपद्धर्म भी मानना पड़ता है!' बड़े करुण शब्दोंमें उसने कहा। बाबाजीपर उसकी अपार श्रद्धा थी और वह उनसे दीक्षा लेने आया था। झूठ बोलकर काम चाहता तो निकाल लेता; परंतु किसीसे भी छल करनेकी कला उसे नहीं आती।

'निकालो इस नास्तिकको!' बाबाजी गरज उठे। पृथ्वीपर मस्तक रखकर वह स्वयं उठ गया। सीधे हनुमानगढ़ी पहुँचा।

'प्रभो!' सिरका घाव कच्चा था। भावावेगसे टाँके टूट गये। केशरीकिशोरका चरण सिन्दूरके बदले मस्तकके रक्तसे रँग उठा। पता नहीं कैसे, वह चरणोंसे उठा और मूर्तिसे अंकमाल देकर चिपक गया। पुजारी दौड़ा 'हैं हैं' करता। उसके हाथोंके धक्केसे एक शव धड़ामसे गिर पड़ा। तो क्या उन वैष्णवाचार्य रामदूतने ही उसे उठाकर छातीसे लगा लिया था? उसे हृदयमें ही रख लिया?

महाकवि सूरदासजीकी भविष्यवाणी

(डॉ० श्रीगिरिजाशंकरजी शास्त्री)

रे मन धीरज क्यों न धरे।
संवत् दो हजार के ऊपर ऐसो जोग परे॥
पूरब पच्छिम उत्तर दक्खिन चहुँ दिसि काल परे॥
अकाल मृत्यु जगमाही व्यापे परजा बहुत मरे॥
सहस बरस लगि सतयुग बीते धर्म की बेल बढ़े॥
स्वर्ण फूल बन पृथ्वी फूले सुख की दशा फिरे॥
सूरदास यह हरि की लीला टारे नाहिं टरे॥

सूरदासजी कहते हैं कि हे मन! तू धैर्य क्यों धारण नहीं करता? दो हजार संवत्के बाद ऐसा योग आयेगा; जब पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चारों दिशाओंमें अकाल पड़ेगा। उस अकालके समय बहुत प्रजा अर्थात् प्राणी मरेंगे और सम्पूर्ण विश्वमें अकाल मृत्यु व्याप्त हो जायगी अर्थात् लोग असमयमें मृत्युको प्राप्त होंगे। पुनः एक हजार वर्ष व्यतीत होनेपर सतयुग आयेगा तब धर्मकी बेल—लता बढ़ने लगेगी। उस समय पृथ्वी सोनेके फूल फूलने लगेगी और सुखकी दशा लौटेगी। सूरदासजी कहते हैं—यह भगवान्की लीला है, जो टालनेसे भी नहीं टलेगी।

सूरदासजीका उपर्युक्त पद ज्योतिषशास्त्रके आलोकमें विचारणीय है। ज्योतिषशास्त्रकी मान्यतानुसार कुल चार युग हैं—सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग, कलियुग। सृष्टिका आरम्भ सत्ययुगसे होता है, जो सत्रह लाख अट्ठाईस हजार वर्षतक चलता है, पुनः त्रेतायुगका आगमन होता है, जो बारह लाख छियानवे हजार वर्षोंतक संचरण करता है, इसके पश्चात् द्वापरयुगका आगमन होता है, जो आठ लाख चौंसठ हजार वर्षोंतक चलता है। इसके बाद कलियुगका प्रवेश होता है, जिसकी अवधि चार लाख बत्तीस हजार वर्ष है। चारों युगोंका मान तिरालिस लाख बीस हजार वर्ष होता है। इन चार युगोंके मानको चतुर्युगीका मान कहा गया है। ऐसे ही जब ये चारों युग एक हजार बार अपना भ्रमण पूर्ण करते हैं, उस समयतक मानवीय गणनानुसार कुल चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष होता है। इसीको एक कल्प कहते हैं और यही ब्रह्माजीका एक दिन होता है और इतनी ही रात्रि होती है। अर्थात् ब्रह्माजीका एक अहोरात्र आठ अरब चौंसठ करोड़ मानवीय वर्षोंके बराबर कहा गया है। इसीको भगवान् श्रीकृष्णने श्रीमद्भगवद्गीतामें अर्जुनको उपदेश करते हुए कहा है—

सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः।
रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः॥
(गीता ८।१७)

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—हे अर्जुन! जो लोग एक हजार युगपर्यन्त ब्रह्माके दिनको तथा इतनी ही रात्रिको (अर्थात् एक हजार युगपर्यन्त) जानते हैं, वस्तुतः वे ही अहोरात्रवेत्ता (कालके तत्त्वको जाननेवाले) हैं।

ज्योतिषशास्त्रानुसार जातकके जीवनमें ग्रहोंकी महादशाएँ चलती हैं और उन नवग्रहोंकी महादशामें प्रत्येक ग्रहोंकी अन्तर्दशा आती है, पुनः एक ग्रहकी अन्तर्दशामें नौ ग्रहोंकी प्रत्यन्तर्दशा चलती है, उस एक ग्रहकी प्रत्यन्तर्दशामें पुनः नौ ग्रहोंकी सूक्ष्मदशा तथा एक ग्रहकी सूक्ष्मदशामें भी उन्हीं नौ ग्रहोंकी प्राण दशा चला करती है। यह सूक्ष्म विचार कुण्डलीमें जातकके जीवन-सन्दर्भमें ज्योतिर्विद् किया करते हैं। इसी तरह आयुर्वेदमें भी ऋतुओंके अनुसार ही रोगादिकी उत्पत्ति एवं उनके उपचारोंका उल्लेख मिलता है। छः ऋतुएँ हैं—ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त, शिशिर तथा वसन्त। प्रत्येक ऋतुमें छहों ऋतु थोड़े-थोड़े समयसे परिभ्रमण करती रहती हैं। आयुर्वेदकी मान्यतानुसार प्रत्येक दिनमें अर्थात् मनुष्योंके एक अहोरात्र (चौबीस घण्टे)-में प्रत्येक ऋतु चार-चार घण्टेके क्रमसे उसी प्रकार व्यतीत होती रहती हैं, जैसे प्रत्येक दिनमें ऋतु, मास, वर्ष आदिके सूक्ष्म अंश दैनिक व्यतीत होते रहते हैं। इसी प्रकारसे प्रत्येक युगमें चारों युग थोड़ी-थोड़ी अवधिके लिये आते हैं। कलियुगके पश्चात् सत्ययुगका ही आगमन होता है। अतएव कलियुगमें भी चारों युगोंका अन्तर थोड़े-थोड़े कालपर आता रहेगा। यह प्रकृतिका अटल नियम है। महाकवि सूरदासजीके उपर्युक्त पदपर विचार करनेसे यही प्रतीत होता है कि कलियुगके पाँच हजार वर्ष बीतनेके बाद अर्थात् विक्रमी संवत्के दो हजार वर्ष व्यतीत होनेपर एक हजार

वर्षपर्यन्त कलि-प्रभाव अपने चरमपर होगा। इस एक हजार वर्षमें पुराणों, इतिहास-ग्रन्थों एवं ज्योतिषशास्त्रमें वर्णित नाना प्रकारके उपद्रव, अमंगल एवं कलियुगका बीभत्स रूप प्रकट होगा, जनतामें त्राहि-त्राहिकी स्थिति बन जायगी। इस अवधिमें दिव्य, अन्तरिक्ष एवं भौमादि उत्पात भी बढ़ जायँगे। अधर्मकी वृद्धिसे प्रकृति क्षुब्ध होगी और जनपदोध्वंस होना आरम्भ हो जायेगा। अधर्मकी वृद्धि, धर्मकी हानि, सर्वत्र आतंक, प्राकृतिक उत्पात, प्रकृतिविपर्यय, प्रजाओंकी अतिशयवृद्धि, पृथ्वीकी आकुलता, महामारी, भूकम्प, भूस्खलन, ज्वालामुखी-विस्फोट, अण्वस्त्रोंका प्रयोग, प्रजामें ईतिका भय, दुर्भिक्षका प्रकोप, संसारके विभिन्न देशोंमें युद्ध और विश्वयुद्धकी स्थिति बननेसे पृथ्वीवासियोंका क्षय होनेपर स्वल्प धर्मात्मा, पुण्यात्मा ही शेष बचे रहेंगे और यह स्थिति लगभग एक हजार वर्षपर्यन्त चलेगी। पुनः पृथ्वीकी परिस्थितिमें परिवर्तन होगा। कलियुगमें ही सत्ययुग अवान्तररूपसे प्रविष्ट होगा, हरिकृपासे धर्मकी वृद्धि होगी। अपने पुण्य प्रतापसे बची हुई प्रजा सुखी हो जायगी। वातावरण निर्मल होगा। चारों ओर सुख, शान्ति एवं समृद्धि छा जायगी। इस पद्यमें संवत्‌का उल्लेख निश्चित ही सूरदासजीकी दृष्टिमें विक्रमादित्य संवत् ही है, कारण सूरदासजी भी इसी संवत्‌की सोलहवीं विक्रमीमें जीवन-यापन कर रहे थे। संवत् दो हजारके ऊपर कहकर उन्होंने किसी एक दिन, एक मास अथवा एक वर्षकी ओर संकेत नहीं किया है, अपितु उनकी दिव्य दृष्टिमें विक्रमी संवत् दो हजारके पश्चात् तीन हजार विक्रमी संवत्‌के मध्य उपर्युक्त घटनाएँ घटित होना प्रारम्भ होंगी। सम्भवतः महात्मा सूरदासजीका भी यही आशय है।

कर्तव्यसे भागिये मत

इटलीकी राजधानी रोमके निकट पोम्पाई नामक एक नगर है। एक बार उसके निकट एक बड़ा ज्वालामुखी फटा। यह दुर्घटना इतने जोरकी हुई कि वह विशाल नगर खण्डहर बन गया और ज्वालामुखीकी धूलिमें दबकर सदैवके लिये भूगर्भमें विलीन हो गया।

पौने दो हजार वर्षके लम्बे अरसेके बाद यह बात केवल इतिहासके पन्नोंपर धुँधली-स्मृतिके रूपमें अंकित रह गयी थी। किसे मालूम था कि यह नगर अभी बिलकुल ही नष्ट नहीं हुआ। भूतत्त्ववेत्ताओंने उन टीलोंको खोदा तो उसमेंसे प्राचीन गौरवकी साक्षी देता हुआ भग्नावशेषके रूपमें एक सुन्दर नगर निकल आया।

उस समय भूकम्पसे बचे निवासियोंने अपनी विपत्तिके कुछ संस्मरण लिखे थे, जो अबतक सुरक्षित हैं। उनमें लिखा है कि जब भूकम्पके धड़ाके हुए तो लोग भागने लगे। जिसे जहाँ बन पड़ा भागा। कुछ बच गये, कुछ मर गये। भागनेवालोंमेंसे कुछने राजद्वारके प्रहरीसे कहा—'चलो, तुम भी भाग चलो।' उसने उत्तर दिया—'मेरा कर्तव्य मुझे अपनी ड्यूटीपरसे हटनेकी आज्ञा नहीं देता।' वह अपना चपरास पहने हुए जहाँका तहाँ खड़ा रहा और उस महान् नगरके साथ समाधिमग्न हो गया।

जब राजद्वारतक खुदाई पहुँची तो देखा कि एक प्रहरीका अस्थि-पिंजर ज्यों-का-त्यों खड़ा है। चपरासका बिल्ला और तलवारकी गलित प्रतिमा उसी पिंजरसे सटी हुई है। वह चाहता तो दूसरे लोगोंकी तरह भाग सकता था, पर कर्तव्यने उसे ऐसा करनेसे रोक दिया।

रोममें उस कंकालका शाही स्वागत किया गया और देशने अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की। शताब्दियाँ बीत गयीं, पर वह रोमका कर्मनिष्ठ प्रहरी सीधा खड़ा हुआ है। दर्शकोंको वह कंकाल उपदेश देता है कि—'भागिये मत, अपने कर्तव्य-स्थलपर खड़े रहिये; क्योंकि मनुष्यका गौरव इसीमें सन्निहित है।'—पं० श्रीरामजी शर्मा आचार्य

श्रीआदिशंकराचार्यविरचित 'प्रबोधसुधाकर'

[गताङ्क सं० १० पृ०-सं० ३७ से आगे]

प्रबोध

माधुर्यं गुडपिण्डे यत्तत्तस्यांशकेऽणुमात्रेऽपि।
एवं न पृथग्भावो गुडत्वमधुरत्वयोरस्ति॥ १५८॥

गुड़के पिण्डमें जो मधुरता होती है, वह उसके कण-कणमें होती है, इस प्रकार गुडत्व और मधुरत्वमें यत्किंचित् भी भेद नहीं है॥ १५८॥

अथवा न भिन्नभावः कर्पूरामोदयोरेवम्।
आत्मस्वरूपमनसां पुंसां जगदात्मतां याति॥ १५९॥

अथवा जिस प्रकार कर्पूर और उसकी सुगन्धिमें कोई भी भेद नहीं है, उसी प्रकार जिनका चित्त आत्मस्वरूप हो गया है, उन पुरुषोंके लिये संसार भी आत्म-भावको प्राप्त हो जाता है॥ १५९॥

यद्भावानुभवः स्यान्निद्रादौ जागरस्यान्ते।
अन्तः स चेत्स्थिरः स्याल्लभते हि तदाऽद्वयानन्दम्॥ १६०॥

निद्राके आरम्भमें और जागृतिके अन्तमें चित्तकी जो अवस्था होती है, वह यदि अन्तःकरणमें स्थिर हो जाय तो यही अद्वयानन्दकी प्राप्ति है॥ १६०॥

अतिगम्भीरेऽपारे ज्ञानचिदानन्दसागरे स्फारे।
कर्मसमीरणतरला जीवतरङ्गावलिः स्फुरति॥ १६१॥

अति गम्भीर, अपार और विस्तृत सच्चिदानन्द-समुद्रमें कर्म-वायुमेंसे प्रेरित हुई जीवात्मारूपी तरंगें उठती हैं॥ १६१॥

खरतरकरैः प्रदीप्तेऽभ्युदिते चैतन्यतिग्मांशौ।
स्फुरति मृषैव समन्तादनेकविधजीवमृगतृष्णा॥ १६२॥

अति दीप्तिशाली चैतन्य-भास्करके अपनी प्रचण्ड किरणोंके सहित उदय होते ही जीव-भावरूप मृगतृष्णा सर्वथा मिथ्या प्रतीत होने लगती है॥ १६२॥

अन्तर्दृष्टे यस्मिञ्जगदिदमारात्परिस्फुरति।
दृष्टे यस्मिन्सकृदपि विलीयते क्वाप्यसद्रूपम्॥ १६३॥
बाह्याभ्यन्तरपूर्णः परमानन्दार्णवे निमग्नो यः।
चिरमाप्लुत इव कलशो महाह्रदे जह्नुतनयायाः॥ १६४॥

अन्तर्दृष्टिके द्वारा जिसको अपने अन्तःकरणमें न देखनेसे ही इस जगत्की स्फूर्ति होती है और जिसके एक बार देख लेनेपर ही यह अत्यन्त असत् संसार न जाने कहाँ लीन हो जाता है; तथा श्रीगंगाजीके महान् जल-पूरमें डूबे हुए कलशके समान जो परमानन्द-समुद्रमें डूबा हुआ बाहर-भीतर सब ओरसे आनन्दमय है (वह ही शुद्ध चेतन-स्वरूप आत्मा है)॥ १६३-१६४॥

पूर्णात्पूर्णतरे परात्परतरेऽप्यज्ञातपारे हरौ
संवित्स्फारसुधार्णवे विरहिते वीचीतरङ्गादिभिः।
भास्वत्कोटिविकासितोज्ज्वलदिगाकाशप्रकाशे परे
स्वानन्दैकरसे निमग्नमनसां न त्वं न चाहं जगत्॥ १६५॥

जो पूर्णसे भी पूर्ण है, परसे भी पर है, अनन्त पार है, संसार-मायाका हरण करनेवाला है, भँवर और तरंगादिसे रहित शुद्ध संवित्का समुद्र है तथा जो अपने कोटि-कोटि सूर्योंके सदृश प्रकाशसे दशों दिशाओंको प्रकाशित कर रहा है, उस निजानन्दमय परब्रह्म परमात्मामें जिनका मन डूबा हुआ है, उनके लिये न मैं है, न तू है और न यह संसार ही है॥ १६५॥

द्विधाभक्ति

चित्ते सत्त्वोत्पत्तौ तटिदिव बोधोदयो भवति।
तर्ह्येव स स्थिरः स्याद्यदि चित्तं शुद्धिमुपयाति॥ १६६॥

चित्तमें सतोगुणके उत्पन्न होनेपर ज्ञानका बिजलीके समान सहसा उदय हो जाता है; उस समय यदि चित्त शुद्ध होता है तो वह स्थिर हो जाता है॥ १६६॥

शुद्ध्यति हि नान्तरात्मा कृष्णपदाम्भोजभक्तिमृते।
वसनमिव क्षारोदैर्भक्त्या प्रक्षाल्यते चेतः॥ १६७॥

किंतु अन्तःकरण भगवान् कृष्णचन्द्रजीके चरणकमलोंकी भक्तिके बिना कभी शुद्ध नहीं हो सकता। खारसे जैसे वस्त्रको शुद्ध किया जाता है, उसी प्रकार चित्तको भक्तिसे निर्मल किया जा सकता है॥ १६७॥

यद्वत्समलादर्शे सुचिरं भस्मादिना शुद्धे।
प्रतिफलति वक्त्रमुच्चैः शुद्धे चित्ते तथा ज्ञानम्॥ १६८॥

जिस प्रकार मलिन दर्पणके बालुका आदिसे

चिरकालतक मार्जन करनेसे स्वच्छ हो जानेपर उसमें मुखका प्रतिबिम्ब स्पष्ट पड़ने लगता है, उसी प्रकार शुद्ध चित्तमें ज्ञानका आविर्भाव हो जाता है॥ १६८॥

जानन्तु तत्र बीजं हरिभक्त्या ज्ञानिनो ये स्युः।
मूर्तं चैवामूर्तं द्वे एव ब्रह्मणो रूपे॥ १६९॥
इत्यूपनिषत्तयोर्वा द्वौ भक्तौ भगवदुपदिष्टौ।
क्लेशादक्लेशाद्वा मुक्तिः स्यादेतयोर्मध्ये॥ १७०॥

संसारमें जो लोग ज्ञाननिष्ठासम्पन्न दिखलायी देते हैं, उनके बोधका मूल कारण भक्तिहीको जानो। '(उस भक्तिके आधार) ब्रह्मके साकार और निराकार दो रूप हैं'—ऐसा उपनिषद् कहते हैं; और भगवान्ने भी (व्यक्तोपासक और अव्यक्तोपासक-भेदसे) दो प्रकारके भक्त और सुगमता तथा कठिनतासे दोनोंसे ही मोक्षकी प्राप्ति बतलायी है॥ १६९-१७०॥

स्थूला सूक्ष्मा चेति द्वेधा हरिभक्तिरुद्दिष्टा।
प्रारम्भे स्थूला स्यात्सूक्ष्मा तस्याः सकाशाच्च॥ १७१॥

भगवान्की भक्ति भी स्थूल और सूक्ष्म दो प्रकारकी होती है; उनमेंसे पहले स्थूल-भक्ति होती है और फिर उसीसे पीछे सूक्ष्म-भक्तिका उदय होता है॥ १७१॥

स्वाश्रमधर्माचरणं कृष्णप्रतिमार्चनोत्सवो नित्यम्।
विविधोपचारकरणैर्हरिदासैः सङ्गमः शश्वत्॥ १७२॥
कृष्णकथासंश्रवणे महोत्सवः सत्यवादश्च।
परयुवतौ द्रविणे वा परापवादे पराङ्मुखता॥ १७३॥
ग्राम्यकथासूद्वेगः सुतीर्थगमनेषु तात्पर्यम्।
यदुपतिकथावियोगे व्यर्थं गतमायुरिति चिन्ता॥ १७४॥

अपने वर्णाश्रम-धर्मोंका आचरण करना, नित्य भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी प्रतिमाका उत्साहपूर्वक विविध सामग्रियोंसे पूजन करना और निरन्तर हरिभक्तोंका संग करना; भगवत्कथाओंके सुननेमें अत्यन्त उत्साह रखना, सत्य भाषण करना तथा परस्त्री, परधन और परनिन्दासे दूर रहना; व्यर्थ और अश्लील बातोंसे घृणा करना, पुण्य-तीर्थ-स्थानोंमें जाते रहना तथा 'भगवत्कथा श्रवणादिके बिना यह आयु यों ही बीत गयी'—ऐसी चिन्ता करना, ये सब स्थूल-भक्तिके लक्षण हैं॥ १७२—१७४॥

एवं कुर्वति भक्तिं कृष्णकथानुग्रहोत्पन्ना।
समुदेति सूक्ष्मभक्तिर्यस्या हरिरन्तराविशति॥ १७५॥

इस प्रकार स्थूल-भक्तिका अभ्यास करते-करते भगवत्कथाके अनुग्रहसे सूक्ष्म-भक्तिका उदय होता है, जिसके अनन्तर ही भगवान्की प्राप्ति हो जाती है॥ १७५॥

स्मृतिसत्पुराणवाक्यैर्यथाश्रुतायां हरेर्मूर्तौ।
मानसपूजाभ्यासो विजननिवासेऽपि तात्पर्यम्॥ १७६॥
सत्यं समस्तजन्तुषु कृष्णस्यावस्थितेर्ज्ञानम्।
अद्रोहो भूतगणे ततस्तु भूतानुकम्पा स्यात्॥ १७७॥
प्रमितयदृच्छालाभे सन्तुष्टिर्दारपुत्रादौ।
ममताशून्यत्वमतो निरहङ्कारत्वमक्रोधः॥ १७८॥
मृदुभाषिता प्रसादो निजनिन्दायां स्तुतौ समता।
सुखदुःखशीतोष्णद्वन्द्वसहिष्णुत्वमापदो न भयम्॥ १७९॥
निद्राहारविहारेष्वनादरः सङ्गराहित्यम्।
वचने चानवकाशः कृष्णस्मरणेन शाश्वती शान्तिः॥ १८०॥
केनापि गीयमाने हरिगीते वेणुनादे वा।
आनन्दाविर्भावो युगपत्स्याद्धृष्टसात्विकोद्रेकः॥ १८१॥

(उस सूक्ष्म-भक्तिके लक्षण ये हैं—) स्मृति और पुराणोंके सद्वाक्योंसे सुनी हुई भगवान्की मूर्तिके मानस-पूजनका अभ्यास, एकान्त-सेवनका प्रेम, सत्य, समस्त प्राणियोंमें श्रीकृष्णचन्द्रको व्यापक जानना, सम्पूर्ण प्राणियोंसे अद्रोह और इन साधनोंसे उत्पन्न हुई समस्त प्राणियोंपर दया, प्रारब्धानुकूल स्वल्पलाभमें सन्तोष रखना, स्त्री और पुत्र आदिमें ममताशून्य होना, अहंकार और क्रोधसे रहित होना, मृदु-भाषण करना, प्रसन्न-चित्त रहना, अपनी निन्दा अथवा स्तुतिमें समान रहना, सुख-दुःख और शीतोष्णादि द्वन्द्वोंको सहन करना, आपत्तिसे भय न करना, निद्रा, आहार और विहारादिमें अनादर, अनासक्त रहना, व्यर्थ वार्तालापके लिये अवकाश न देना, श्रीकृष्ण-स्मरणसे निरन्तर शान्त-चित्त रहना तथा कोई भगवत्सम्बन्धी गीतका गान करे अथवा बाँसुरी बजाये तो आनन्दके आविर्भावसे एक साथ ही कई सात्त्विक भावोंका प्रौढ़

उद्रेक हो जाना॥ १७६—१८१॥

तस्मिन्ननुभवति मनः प्रगृह्यमाणं परमात्मसुखम्।
स्थिरतां याते तस्मिन् याति मदोन्मत्तदन्तिदशाम्॥ १८२॥

ऐसा अनुभव करते-करते परमात्म-सुखका ग्रहण करके जब चित्त स्थिर हो जाता है तो उसकी अवस्था मतवाले हाथीके समान हो जाती है॥ १८२॥

जन्तुषु भगवद्भावं भगवति भूतानि पश्यति क्रमशः।
एतादृशी दशा चेत्तदैव हरिदासवर्यः स्यात्॥ १८३॥

और क्रमशः वह समस्त प्राणियोंमें भगवान्‌को और भगवान्‌में समस्त प्राणियोंको देखने लगता है, जिस समय ऐसी अवस्था हो जाय, तभी उसे भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ समझना चाहिये॥ १८३॥

ध्यानविधि

यमुनातटनिकटस्थितवृन्दावनकानने महारम्ये।
कल्पद्रुमतलभूमौ चरणं चरणोपरि स्थाप्य॥ १८४॥
तिष्ठन्तं घननीलं स्वतेजसा भासयन्तमिह विश्वम्।
पीताम्बरपरिधानं चन्दनकर्पूरलिप्तसर्वाङ्गम्॥ १८५॥
आकर्णपूर्णनेत्रं कुण्डलयुगमण्डितश्रवणम्।
मन्दस्मितमुखकमलं सुकौस्तुभोदारमणिहारम्॥ १८६॥
वलयाङ्गुलीयकाद्यानुज्ज्वलयन्तं स्वलङ्कारान्।
गलविलुलितवनमालं स्वतेजसापास्तकलिकालम्॥ १८७॥
गुञ्जारवालिकलितं गुञ्जापुञ्जान्विते शिरसि।
भुञ्जानं सहगोपैः कुञ्जान्तरवर्तिनं हरिं स्मरत॥ १८८॥

श्रीयमुनाजीके तटपर स्थित वृन्दावनके किसी महा मनोहर उद्यानमें जो कल्पवृक्षके नीचे पृथिवीपर पाँव-पर-पाँव रखकर बैठे हुए हैं, मेघके समान श्यामवर्ण हैं, अपने तेजसे इस निखिल ब्रह्माण्डको प्रकाशित कर रहे हैं, सुन्दर पीताम्बर धारण किये हुए हैं, समस्त शरीरमें कर्पूर-मिश्रित चन्दनका लेप किये हुए हैं, कर्णपर्यन्त लम्बायमान जिनके नेत्र हैं, दोनों कानोंमें कुण्डल हैं, मुख-कमलसे मन्द-मन्द मुसका रहे हैं, वक्षःस्थलमें कौस्तुभ-मणि-युक्त सुन्दर हार है, जिनकी शोभाने कंकण और अंगूठी आदि उनके आभूषणोंकी भी शोभा बढ़ा दी है, जिनके गलेमें वनमाला लटक रही है और अपने तेजसे जिन्होंने कलिकालको परास्त कर दिया है तथा गुंजावलिसे युक्त जिनके शिरपर गुंजा और भ्रमरोंका शब्द हो रहा



है, किसी कुंजके भीतर बैठकर ग्वालबालोंके साथ भोजन करते हुए उन श्रीहरिका स्मरण करो॥ १८४—१८८॥

मन्दारपुष्पवासितमन्दानिलसेवितं परानन्दम्।
मन्दाकिनीयुतपदं नमत महानन्ददं महापुरुषम्॥ १८९॥

जो कल्पवृक्षके पुष्पोंकी गन्धसे युक्त मन्द-मन्द वायुसे सेवित हैं, परमानन्दस्वरूप हैं तथा जिनके चरण-कमलोंमें श्रीगंगाजी विराजमान हैं, उन महानन्ददायक महापुरुषको नमस्कार करो॥ १८९॥

सुरभीकृतदिग्वलयं सुरभिशतैरावृतं सदा परितः।
सुरभीतिक्षपणमहासुरभीमं यादवं नमत॥ १९०॥

जिन्होंने समस्त दिशाओंको सुगन्धित कर रखा है, जो चारों ओरसे कामधेनुके समान गौओंसे घिरे हुए हैं तथा देवताओंके भयको दूर करनेके लिये बड़े-बड़े असुरोंको भय उपजानेवाला जिनका भयानक रूप है, उन यदुकुल-भूषणको नमस्कार करो॥ १९०॥

कन्दर्पकोटिसुभगं वाञ्छितफलदं दयार्णवं कृष्णम्।
त्यक्त्वा कमन्यविषयं नेत्रयुगं द्रष्टुमुत्सहते॥ १९१॥

जो करोड़ों कामदेवोंसे भी सुन्दर हैं, वांछित फलके देनेवाले हैं, दयाके समुद्र हैं, उन श्रीकृष्णचन्द्रको

छोड़कर ये नेत्रयुगल और किस विषयको देखनेके लिये उत्सुक हों?॥ १९१॥

पुण्यतमामतिसुरसां मनोऽभिरामां हरेः कथां त्यक्त्वा।
श्रोतुं श्रवणद्वन्द्वं ग्राम्यं कथमादरं भवति॥ १९२॥

अति पवित्र, अति सरस और अत्यन्त मनोहारिणी हरिकथाको छोड़कर अन्य ग्राम्य-वार्ताओंके सुननेमें कर्ण-युगल कैसे प्रवृत्त हों?॥ १९२॥

दौर्भाग्यमिन्द्रियाणां कृष्णो विषये हि शाश्वतिके।
क्षणिकेषु पापकरणेष्वपि सज्जन्ते यदन्यविषयेषु॥ १९३॥

इन्द्रियोंका यह परम दुर्भाग्य ही है कि नित्य विद्यमान श्रीकृष्णरूप विषयके रहते हुए भी अन्य क्षणिक और पापमय विषयोंमें प्रीति करती हैं॥ १९३॥

सगुण-निर्गुणकी एकता

श्रुतिभिर्महापुराणैः सगुणगुणातीतयोरैक्यम्।
यत्प्रोक्तं गूढतया तदहं वक्ष्येऽतिविशदार्थम्॥ १९४॥

श्रुतियों और महापुराणोंने जो सगुण और निर्गुणकी एकता गुप्तरूपसे कही है, उसीको मैं स्पष्ट करके बतलाता हूँ॥ १९४॥

भूतेष्वन्तर्यामी ज्ञानमयः सच्चिदानन्दः।
प्रकृतेः परः परात्मा यदुकुलतिलकः स एवायम्॥ १९५॥

जो ज्ञानस्वरूप, सच्चिदानन्द, प्रकृतिसे परे परमात्मा सब भूतोंमें अन्तर्यामीरूपसे स्थित है, यह यदुकुल-भूषण श्रीकृष्ण वही है॥ १९५॥

ननु सगुणो दृश्यतनुस्तथैकदेशाधिवासश्च।
स कथं भवेत्परात्मा प्राकृतवद्रागरोषयुतः॥ १९६॥

(यदि कहो कि) यह श्रीकृष्ण तो सगुण है, दृश्य शरीरधारी है, एकदेशी है तथा साधारण पुरुषोंके समान राग-द्वेष-युक्त है; यह परमात्मा कैसे हो सकता है?॥ १९६॥

इतरे दृश्यपदार्था लक्ष्यन्तेऽनेन चक्षुषा सर्वे।
भगवाननया दृष्ट्या न लक्ष्यते ज्ञानदृग्गम्यः॥ १९७॥

(तो इस विषयमें यह विचारना चाहिये कि) इन चर्म-चक्षुओंसे तो अन्य सब दृश्य-पदार्थ ही जाने जा सकते हैं, भगवान् इनसे दिखलायी नहीं दे सकते; वे तो ज्ञान-दृष्टिके ही विषय हैं॥ १९७॥

यद्विश्वरूपदर्शनसमये पार्थाय दत्तवान् भगवान्।
दिव्यं चक्षुस्तस्माददृश्यता युज्यते नृहरौ॥ १९८॥

भगवान्ने अपना विश्वरूप दिखलाते समय अर्जुनको दिव्य-दृष्टि दी थी, इससे उन नररूप हरिकी अदृश्यता सिद्ध ही है। (क्योंकि चर्म-चक्षुओंसे न दिख सकनेके कारण ही तो भगवान्ने अर्जुनको दिव्य-दृष्टि दी थी)॥ १९८॥

साक्षाद्यथैकदेशे वर्तुलमुपलभ्यते रवेर्बिम्बम्।
विश्वं प्रकाशयति तत्सर्वैः सर्वत्र दृश्यते युगपत्॥ १९९॥

गोलाकार सूर्य-मण्डल साक्षात् एक देशमें ही दिखलायी देता है, किंतु वह सम्पूर्ण जगत्को प्रकाशित करता है और सबको एक साथ ही सब जगह दिखलायी देता है॥ १९९॥

यद्यपि साकारोऽयं तथैकदेशी विभाति यदुनाथः।
सर्वगतः सर्वात्मा तथाप्ययं सच्चिदानन्दः॥ २००॥

इसी प्रकार यदुनाथ श्रीकृष्णचन्द्र यद्यपि साकार हैं और एकदेशीसे दिखलायी देते हैं तथापि वे सर्वव्यापी, सर्वात्मा और सच्चिदानन्दस्वरूप ही हैं॥ २००॥

एको भगवान् रेमे युगपद्गोपीष्वनेकासु।
अथवा विदेहजनकश्रुतदेवभूदेवयोर्हरिर्युगपत्॥ २०१॥

देखो, एक ही भगवान्ने एक साथ अनेक गोपियोंके साथ रमण किया तथा विदेह जनक और श्रुतदेव ब्राह्मण दोनोंके घरोंमें एक ही साथ आतिथ्य ग्रहण किया॥ २०१॥

अथवा कृष्णाकारां स्वचमूं दुर्योधनोऽपश्यत्।
तस्माद्व्यापक आत्मा भगवान्हरिरीश्वरः कृष्णः॥ २०२॥

इनके अतिरिक्त दुर्योधनने भी अपनी समस्त सेनाको श्रीकृष्णरूप ही देखा था। इससे विदित होता है कि श्रीकृष्णचन्द्र व्यापक आत्मा ईश्वर हरि ही हैं॥ २०२॥

वक्षसि यदा जघान श्रीवत्सः श्रीपतेः स किं द्वेष्यः।
भक्तानामसुराणामन्येषां वा फलं सदृशम्॥ २०३॥

वक्षःस्थलमें लगा हुआ पाद-प्रहाररूप श्रीवत्स

क्या भगवान्‌को अप्रिय है? (भगवान्‌को तो कोई भी प्रिय अथवा अप्रिय नहीं है) भक्त, असुर अथवा अन्य पुरुषोंको भी अपने-अपने आचरणानुसार ही फल मिलता है॥ २०३॥

तस्मान्न कोऽपि शत्रुर्नो मित्रं नाप्युदासीनः।
नृहरिः सन्मार्गस्थः सफलः शाखीव यदुनाथः॥ २०४॥

इसलिये भगवान्‌का न कोई मित्र है, न शत्रु है और न उदासीन है। श्रीनृहरि तो सुन्दर मार्गके एक ओर लगे हुए फलयुक्त वृक्षके समान हैं॥ २०४॥

लोहशलाकानिवहैः स्पर्शाश्मनि भिद्यमानेऽपि।
स्वर्णत्वमेति लौहं द्वेषादपि विद्विषां तथा प्राप्तिः॥ २०५॥

पारसको यदि लोहेकी शलाकाओंसे भेदा भी जाय तो भी उनका लोहा सुवर्ण हो जाता है, इसी प्रकार विद्वानोंके द्वेषसे भी कुछ-न-कुछ लाभ ही होता है॥ २०५॥

नन्वात्मनः सकाशादुत्पन्ना जीवसन्ततिश्चेयम्।
जगतः प्रियतर आत्मा तत्प्रकृते नैव सम्भवति॥ २०६॥

(यदि कहो कि) आत्मासे तो इन समस्त जीवोंकी उत्पत्ति हुई है और संसारमें सबसे अधिक प्रिय भी आत्मा ही है, किंतु श्रीकृष्णचन्द्रमें यह बात नहीं मिल सकती॥ २०६॥

वत्साहरणावसरे पृथग्वयोरूपवासनाभूषान्।
हरिरजमोहं कर्तुं सवत्सगोपान् विनिर्ममे स्वस्मात्॥ २०७॥

(तो इस विषयमें यह देखना चाहिये कि) बछड़ोंको चुरा लेनेके समय ब्रह्माको मोहित करनेके लिये भगवान्‌ने पृथक्-पृथक् अवस्था, रूप और वासनाओंसे युक्त गोप और बछड़ोंको अपने आपसे ही बना लिया था॥ २०७॥

अग्नेर्यथा स्फुलिङ्गाः क्षुद्रास्तु व्युच्चरन्तीति।
श्रुत्यर्थं दर्शयितुं स्वतनोरतनोत्स जीवसन्दोहम्॥ २०८॥

'जिस प्रकार अग्निसे छोटी-छोटी चिनगारियाँ निकलती हैं, उसी प्रकार आत्मासे विविध प्राणियोंकी उत्पत्ति होती है।'—इस श्रुतिके अर्थको सिद्ध करनेके लिये ही भगवान्‌ने अपने शरीरसे उस जीव-समूहको रचा था॥ २०८॥

यमुनातीरनिकुञ्जे कदाचिदपि वत्सकांश्च चारयति।
कृष्णे तथार्यगोपेषु च वरगोष्ठेषु चारयत्स्वारात्॥ २०९॥

वत्सं निरीक्ष्य दूराद्गावः स्नेहेन सम्भ्रान्ताः।
तदभिमुखं धावन्त्यः प्रययुर्गोपैश्च दुर्वाराः॥ २१०॥

एक दिन जबकि यमुनाके तटपर एक कुंजमें श्रीकृष्ण बछड़ोंको चरा रहे थे और दूसरे गोष्ठमें गोपगण गौओंको चरा रहे थे तो दूरसे ही अपने बछड़ोंको देखकर स्नेहसे व्याकुल होकर गौएँ उनके पास दौड़ आयीं। वे गोपोंके बहुत कुछ रोकनेसे भी न रुक सकीं॥ २०९-२१०॥

प्रस्त्रवभरेण भूयः स्रुतस्तनाः प्राप्य पूर्ववद्वत्सान्।
पृथुरसनया लिहन्त्यस्तर्णकवत्यः प्रपाययन्प्रमुदा॥ २११॥

दूधके उमड़नेसे उनके स्तन बहने लगे और जिनके दूसरे बछड़ोंने जन्म ले लिया था उन्होंने भी अपने पहले बछड़ोंको अपनी लम्बी-लम्बी जीभोंसे चाटते हुए उमंगमें भरकर खूब दूध पिलाया॥ २११॥

गोपा अपि निजबालाञ्जगृहुर्मूर्धानमाघ्राय।
इत्थमलौकिकलाभस्तेषां तत्र क्षणं ववृधे॥ २१२॥

गोपोंने भी अपने-अपने बालकोंका सिर सूँघते हुए उन्हें गोदमें उठा लिया। इस प्रकार उस समय एक क्षणके लिये वहाँ अलौकिक उत्साहकी वृद्धि हुई॥ २१२॥

गोपा वत्साश्चान्या पूर्वं कृष्णात्मका ह्यभवन्।
तेनात्मनः प्रियत्वं दर्शितमेतेषु कृष्णेन॥ २१३॥



ये सब ग्वालबाल और बछड़े श्रीकृष्णरूप ही तो थे; इसलिये ऐसा करके श्रीकृष्णचन्द्रने इनमें अपनी प्रियतमताको दिखला दिया॥ २१३॥ [क्रमशः]

'गाय बचेगी देश बचेगा'

'गाय को बचाना ही देश को बचाना है। जिसने गाय बचायी समझो उसने देश बचाया॥'—ये वक्तव्य हैं अखिल भारतीय इमाम-संगठनके मुख्य इमाम उमेर अहमद इलयासीजीके। वे स्वयं भी शाकाहारी हैं और देश-विदेशमें शाकाहारको बढ़ावा देनेके लिये शाकाहारकी उपयोगिताको प्रामाणिक ढंगसे बताते रहते हैं। अनेकतामें एकताका मन्त्र लेकर सर्वधर्म-समभाव-सभाओंमें वे निरन्तर देश-विदेश जाते रहते हैं।

मुझे सर्वप्रथम उनको सुननेका सौभाग्य अखिल भारतीय जैन समाजके डॉक्टरोंद्वारा आयोजित सभा, लोधी रोड दिल्ली-स्थित इन हैबिटेट सेन्टरमें अहिंसा-कामधेनु विश्वविद्यालयके चांसलर आदरणीय डॉ० मदनमोहनजी बजाजके सान्निध्यमें प्राप्त हुआ।

मैं अत्यन्त भावविभोर हो गया, जब मैंने इमाम इलयासी साहबको शाकाहारी जैन-समाजमें मंचपर भाषण देते हुए सुना। मैं इमाम साहबसे गौ-रक्षाके लिये मिलने कस्तूरबा गांधी मार्ग, दिल्लीमें स्थित मस्जिदमें गया, ताकि सारा देश उनके विचारोंको भलीभाँति जान ले।

वे बोले—'मैं स्वयं कृष्णवंशी हूँ। हम लोग गायको पालते हैं। तिब्बे नब्वी किताबका हवाला देते हुए इमाम इलयासीजीने कहा—मोहम्मद साहबने कहा है कि गायका दूध तंदरुस्ती और मांस बीमारी तथा घी शिफा है। आज देशकी दुर्दशाके लिये हम स्वयं जिम्मेदार हैं। जिस गायको गोशालामें होना चाहिये, वह सड़कोंपर मारी-मारी फिर रही है और दुर्घटनाका शिकार होकर मर रही है।

अब तो मुसलिम भाई भी शाकाहारकी तरफ रुख कर रहे हैं। वे मांसाहारसे थक गये हैं। शाकाहारके बहुत फायदे हैं। शाकाहारी व्यक्ति मांसाहारीके मुकाबले निरोगी होता है। वह क्रोधी नहीं होता और उसके दिलमें दया रहती है। वह अच्छे काम करनेमें आगे रहता है। उसमें भाईचारे और एक-दूसरेकी मदद करने तथा दूसरेका दिल न दुखानेकी भावना होती है।

देशी गाय हमारे देशका भविष्य है। जिसे हिन्दू भाई गऊ माता कहते हैं, पर दुःखकी बात है कि कुछ लोग उसे खाना प्लास्टिककी थैलीमें डालकर दे देते हैं, जिससे गायको बहुत तकलीफ होती है और वही प्लास्टिक उसके मरनेका जरिया बन जाती है।

मेरी सबसे पुरजोर अपील है कि प्लास्टिककी थैलीमें खाना बिलकुल न दें और खुली एवं साफ जगहपर रखकर दें।

आज हम अपनी संस्कृतिको भूलते जा रहे हैं। यदि हम गायको पहली रोटी अपने हाथोंसे खिलाते और गोशालामें उनको रखनेकी व्यवस्था करते तो कितना अच्छा होता। गाय जीवनभर दूध, मक्खन, दही, घी, गोबर, गोमूत्र देकर हमपर उपकार करती है, परंतु बदलेमें हम उसे क्या देते हैं? कोई छत नहीं, पानीकी व्यवस्था नहीं, खानेको चारा नहीं। हमें गायका आदर-सम्मान करना चाहिये। उसे आवारा पशुकी तरह नहीं छोड़ना चाहिये। गायकी सेवाके बराबर कोई धर्म नहीं है।

बाबरनामेमें बादशाह बाबरने बाकायदा यह आदेश पारित किया कि गौकी हत्या इसलामके विरुद्ध है।

मेरा तो सरकारसे आग्रह है कि भारत देशकी तरक्कीके लिये एक गाय-मन्त्रालय बने, जो इसकी हिफाजत, भोजन और गोशालामें रखनेकी व्यवस्था करे। सरकार अरबों रुपये मछली बोर्ड, बकरी बोर्ड, ऊँट बोर्डपर खर्च करती है, लेकिन आजतक गायकी रक्षाके लिये कोई भी बोर्ड नहीं बना। मुझे सरकारसे यह उम्मीद है कि गाय बचानेके लिये मन्त्रालय या बोर्डका गठन हो, तभी भारत पुनः विश्वगुरु बन सकता है।'

[प्रस्तुति—कवि श्रीदिनेशजी छिम्वाल 'पथिक']

गोभक्त मनुष्य जिस-जिस वस्तुकी इच्छा करता है, वह सब उसे प्राप्त होती है। स्त्रियोंमें भी जो गौओंकी भक्त हैं, वे मनोवाञ्छित कामनाएँ प्राप्त कर लेती हैं। पुत्रार्थी मनुष्य पुत्र पाता है और कन्यार्थी कन्या। धन चाहनेवालेको धन और धर्म चाहनेवालेको धर्म प्राप्त होता है। विद्यार्थी विद्या पाता है और सुखार्थी सुख। गोभक्तके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं है। [महा० अनु०]

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७१, शक १९३६, सन् २०१४, सूर्य दक्षिणायन, शरद्-हेमन्त-ऋतु, मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें २।४३ बजेतक	शुक्र	भरणी दिनमें ३।४३ बजेतक	७नवम्बर	वृषराशि रात्रिमें ९।४१ बजेसे, विशाखाका सूर्य दिनमें ७।३६ बजे।
द्वितीया " २।१६ बजेतक	शनि	कृत्तिका " ३।३९ बजेतक	८ "	× × ×
तृतीया " २।१८ बजेतक	रवि	रोहिणी सायं ४।३ बजेतक	९ "	भद्रा दिनमें २।१७ बजेसे रात्रिमें २।१८ बजेतक, मिथुनराशि रात्रिमें ४।३१ बजेसे।
चतुर्थी " २।५१ बजेतक	सोम	मृगशिरा " ४।५९ बजेतक	१० "	संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय रात्रिमें ८।१७ बजे।
पंचमी " ३।५४ बजेतक	मंगल	आर्द्रा रात्रिमें ६।२५ बजेतक	११ "	× × ×
षष्ठी रात्रिशेष ५।२४ बजेतक	बुध	पुनर्वसु " ८।१६ बजेतक	१२ "	भद्रा रात्रिशेष ५।२४ बजेसे, कर्कराशि दिनमें १।४८ बजेसे।
सप्तमी अहोरात्र	गुरु	पुष्य " १०।३१ बजेतक	१३ "	भद्रा रात्रिमें ६।२१ बजेतक, मूल रात्रिमें १०।३१ बजेसे।
सप्तमी प्रातः ७।१६ बजेतक	शुक्र	आश्लेषा " १।१ बजेतक	१४ "	सिंहराशि रात्रिमें १।१ बजेसे, श्रीभैरवाष्टमीव्रत।
अष्टमी दिनमें ९।२२ बजेतक	शनि	मघा " ३।३८ बजेतक	१५ "	मूल रात्रिमें ३।३८ बजेतक।
नवमी " ११।३१ बजेतक	रवि	पू० फा० " ६।१२ बजेतक	१६ "	भद्रा रात्रिमें १२।३२ बजेसे, वृश्चिकसंक्रान्ति रात्रिशेष ५।२९ बजे, हेमन्त ऋतु प्रारम्भ।
दशमी " १। ३३बजेतक	सोम	उ० फा० अहोरात्र	१७ "	भद्रा दिनमें १।३३ बजेतक, कन्याराशि दिनमें १२।४७ बजेसे।
एकादशी " ३।१८ बजेतक	मंगल	उ० फा० दिनमें ८।३२ बजेतक	१८ "	उत्पन्ना एकादशीव्रत (सबका)।
द्वादशी सायं ४।४१ बजेतक	बुध	हस्त " १०।३२ बजेतक	१९ "	तुलाराशि रात्रिमें ११।१९ बजेसे, प्रदोषव्रत।
त्रयोदशी " ५।३७ बजेतक	गुरु	चित्रा " १२।६ बजेतक	२० "	भद्रा सायं ५।३७ बजेसे रात्रिशेष ५।४९ बजेतक।
चतुर्दशी रात्रिमें ६।२ बजेतक	शुक्र	स्वाती " १।११ बजेतक	२१ "	× × ×
अमावस्या " ५।५५ बजेतक	शनि	विशाखा " १।४६ बजेतक	२२ "	अमावस्या, सायन धनुका सूर्य रात्रिमें २।३० बजे, वृश्चिकराशि दिनमें ७।३७ बजेसे।

सं० २०७१, शक १९३६, सन् २०१४, सूर्य दक्षिणायन, हेमन्त-ऋतु, मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा सायं ५।१९ बजेतक	रवि	अनुराधा दिनमें १।५० बजेतक	२३नवम्बर	मूल दिनमें १।५० बजेसे।
द्वितीया " ४।१६ बजेतक	सोम	ज्येष्ठा " १।२८ बजेतक	२४ "	धनुराशि दिनमें १।२८ बजेसे।
तृतीया दिनमें २।४८ बजेतक	मंगल	मूल " १२।४२ बजेतक	२५ "	भद्रा रात्रिमें १।५४ बजेसे, मूल दिनमें १२।४२ बजेतक।
चतुर्थी " १।० बजेतक	बुध	पू०षा० " ११।३६ बजेतक	२६ "	भद्रा दिनमें १।० तक, मकरराशि सायं ५।१६ बजेसे, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।
पंचमी " १०।५८ बजेतक	गुरु	उ० षा० " १०।१५ बजेतक	२७ "	श्रीस्कन्दषष्ठी, श्रीरामविवाह, चम्पाषष्ठी।
षष्ठी " ८।४३ बजेतक सप्तमी रात्रिशेष ६।२२ बजेतक	शुक्र	श्रवण " ८।४१ बजेतक	२८ "	भद्रा रात्रिशेष ६।२२ बजेसे, कुम्भराशि रात्रिमें ७।५२ बजेसे पञ्चकारम्भ रात्रिमें ७।५२ बजे।
अष्टमी रात्रिमें ४ बजेतक	शनि	धनिष्ठा प्रातः ७।३ बजेतक शतभिषा रात्रिशेष ५।२१ बजेतक	२९ "	भद्रा सायं ५।१२ बजेतक।
नवमी " १।४१ बजेतक	रवि	पू० भा० रात्रिमें ३।४४ बजेतक	३० "	मीनराशि रात्रिमें १०।८ बजेसे, श्रीमहानन्दानवमी।
दशमी " ११।२९ बजेतक	सोम	उ० भा० " २।१५ बजेतक	१ दिसम्बर	मूल रात्रिमें २।१५ बजेसे।
एकादशी " ९।३२ बजेतक	मंगल	रेवती " १।० बजेतक	२ "	भद्रा दिनमें १०।३१ बजेसे रात्रिमें ९।३२ बजेतक, मेषराशि रात्रिमें १।० बजेसे, मोक्षदा एकादशीव्रत (सबका), पञ्चक रात्रिमें १।० बजेतक, श्रीगीता-जयन्ती।
द्वादशी " ७।५१ बजेतक	बुध	अश्विनी " १२।४ बजेतक	३ "	ज्येष्ठाका सूर्य दिनमें ३।४२ बजे, मूल रात्रिमें १२।४ बजेतक।
त्रयोदशी " ६।३१ बजेतक	गुरु	भरणी " ११।२७ बजेतक	४ "	वृषराशि रात्रिशेष ५।२४ बजेसे, प्रदोषव्रत।
चतुर्दशी सायं ५।३८ बजेतक	शुक्र	कृत्तिका " ११।१६ बजेतक	५ "	भद्रा सायं ५।३८ बजेसे रात्रिशेष ५।२६ बजेतक, व्रत-पूर्णिमा।
पूर्णिमा सायं ५।१३ बजेतक	शनि	रोहिणी " ११।३४ बजेतक	६ "	पूर्णिमा।

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७१, शक १९३६, सन् २०१४, सूर्य दक्षिणायन, हेमन्त-ऋतु, पौष कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा सायं ५।१९ बजेतक	रवि	मृगशिरा रात्रिमें १२।२१ बजेतक	७दिसम्बर	मिथुनराशि दिनमें ११।५७ से।
द्वितीया रात्रिमें ५।५७ बजेतक	सोम	आर्द्रा ,, १।३९ बजेतक	८ ,,	भद्रा रात्रिशेष ६।२९ बजेसे।
तृतीया ,, ७।२ बजेतक	मंगल	पुनर्वसु ,, ३।२५ बजेतक	९ ,,	भद्रा रात्रिमें ७।२ बजेतक, कर्कराशि रात्रिमें ८।५८ बजेसे, संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय रात्रिमें ७।५१ बजे।
चतुर्थी ,, ८।३७ बजेतक	बुध	पुष्य रात्रिशेष ५।३५ बजेतक	१० ,,	मूल रात्रिशेष ५।३५ बजेसे।
पंचमी ,, १०।३१ बजेतक	गुरु	आश्लेषा अहोरात्र	११ ,,	× × ×
षष्ठी ,, १२।३८ बजेतक	शुक्र	,, प्रातः ८।१ बजेतक	१२ ,,	भद्रा रात्रिमें १२।३८ बजेसे, सिंहराशि प्रातः ८।१ बजेसे।
सप्तमी ,, २।५० बजेतक	शनि	मघा दिनमें १०।३८ बजेतक	१३ ,,	भद्रा दिनमें १।४५ बजेतक, मूल दिनमें १०।३८ बजेतक।
अष्टमी ,, ४।५२ बजेतक	रवि	पू० फा० ,, १।१३ बजेतक	१४ ,,	कन्याराशि रात्रिमें ७।४९ बजेसे, अष्टकाश्राद्ध।
नवमी रात्रिशेष ६।३९ ,,	सोम	उ० फा० ,, ३।३६ बजेतक	१५ ,,	अन्वष्टकाश्राद्ध।
दशमी अहोरात्र	मंगल	हस्त सायं ५।४२ बजेतक	१६ ,,	भद्रा रात्रिमें ७।१९ बजेसे, तुलाराशि रात्रिशेष ६।३२ बजेसे, धनुसंक्रान्ति सायं ५।३२ बजे, खरमासारम्भ।
दशमी प्रातः ८ बजेतक	बुध	चित्रा रात्रिमें ७।२१ बजेतक	१७ ,,	भद्रा प्रातः ८।० बजेतक।
एकादशी दिनमें ८।५६ ,,	गुरु	स्वाती ,, ८।३५ बजेतक	१८ ,,	सफला एकादशीव्रत (सबका)।
द्वादशी ,, ९।१९ बजेतक	शुक्र	विशाखा ,, ९।१६ बजेतक	१९ ,,	वृश्चिकराशि दिनमें ३।६ बजेसे, प्रदोषव्रत।
त्रयोदशी ,, ९।१० बजेतक	शनि	अनुराधा ,, ९।२९ बजेतक	२० ,,	भद्रा दिनमें ९।१० बजेसे रात्रिमें ८।५१ बजेतक। मूल रात्रिमें ९।२९ बजेसे।
चतुर्दशी ,, ८।३२ बजेतक	रवि	ज्येष्ठा ,, ९।१३ बजेतक	२१ ,,	धनुराशि रात्रिमें ९।१३ बजे, श्राद्धकी अमावस्या।
अमावस्या प्रातः ७।२७ ,, प्रतिपदा रात्रिशेष ५।५९ बजेतक	सोम	मूल ,, ८।३२ बजेतक	२२ ,,	सोमवती अमावस्या, मूल रात्रिमें ८।३२ बजेतक, सायन मकरका सूर्य दिनमें १।१४ बजे।

सं० २०७१, शक सं० १९३६, सन् २०१४-२०१५, सूर्य दक्षिणायन, हेमन्त-ऋतु, पौष शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
द्वितीय रात्रिमें ४।१० बजेतक	मंगल	पू० षा० रात्रिमें ७।३१ बजेतक	२३दिसम्बर	मकरराशि रात्रिमें १।१२ बजेसे।
तृतीया ,, २।६ बजेतक	बुध	उ० षा० ,, ६।१३ बजेतक	२४ ,,	× × ×
चतुर्थी ,, ११।५२ बजेतक	गुरु	श्रवण सायं ४।४३ बजेतक	२५ ,,	भद्रा दिनमें १२।५९ बजेसे रात्रिमें ११।५२ बजेतक, कुम्भराशि रात्रिमें ३।५५ बजेसे, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, पञ्चकारम्भ रात्रिमें ३।५५ बजे।
पंचमी ,, ९।३२ बजेतक	शुक्र	धनिष्ठा दिनमें ३।५ बजेतक	२६ ,,	× × ×
षष्ठी ,, ७।९ बजेतक	शनि	शतभिषा ,, १।२४ बजेतक	२७ ,,	मीनराशि रात्रिशेष ६।११ बजेसे।
सप्तमी सायं ४।५१ बजेतक	रवि	पू० भा० ,, ११।४७ बजेतक	२८ ,,	भद्रा सायं ४।५१ बजेसे रात्रिमें ३।४७ बजेतक।
अष्टमी दिनमें २।४२ बजेतक	सोम	उ० भा० ,, १०।१६ बजेतक	२९ ,,	पूर्वाषाढ़का सूर्य रात्रिमें ६।३० बजे, मूल दिनमें १०।१६ बजेसे।
नवमी ,, १२।४५ बजेतक	मंगल	रेवती ,, ८।५८ बजेतक	३० ,,	मेषराशि दिनमें ८।५८ बजेसे, पञ्चक समाप्त दिनमें ८।५८ बजे।
दशमी ,, ११।७ बजेतक	बुध	अश्विनी प्रातः ७।५६ बजेतक	३१ ,,	भद्रा रात्रिमें १०।२९ बजेसे, मूल प्रातः ७।५६ बजेतक।
एकादशी ,, ९।५० बजेतक	गुरु	भरणी ,, ७।१५ बजेतक	१ जन.१५	सन् २०१५ प्रारम्भ, भद्रा दिनमें ९।५० बजेतक, वृषराशि दिनमें १।११ बजेसे, पुत्रदा एकादशीव्रत (सबका)।
द्वादशी ,, ८।५७ बजेतक	शुक्र	कृत्तिका ,, ६।५७ बजेतक	२ ,,	प्रदोषव्रत।
त्रयोदशी ,, ८।३५ बजेतक	शनि	रोहिणी ,, ७।९ बजेतक	३ ,,	मिथुनराशि रात्रिमें ७।३० बजेसे।
चतुर्दशी ,, ८।४३ बजेतक	रवि	मृगशिरा ,, ७।५० बजेतक	४ ,,	भद्रा दिनमें ८।४३ बजेसे रात्रिमें ९।४ बजेतक, व्रत-पूर्णिमा।
पूर्णिमा ,, ९।२५ बजेतक	सोम	आर्द्रा ,, ९।२ बजेतक	५ ,,	कर्कराशि रात्रिमें ४।१६ बजेसे, पूर्णिमा, माघस्नान प्रारम्भ।

साधनोपयोगी पत्र

भोग, मोक्ष और प्रेम—सभीके लिये भजन ही करना चाहिये

सप्रेम हरिस्मरण! भाई! सबके लिये यही एक नियम तो नहीं है, परंतु भगवत्कृपाका यह भी एक तरीका अवश्य है। वे जिसपर कृपा करते हैं, उसे दुःखका अमोघ दान दिया करते हैं। उसका धन हरण करते हैं, मान घटा देते हैं एवं बन्धुओं और मित्रोंमें उसके प्रति घृणा या उपेक्षाकी वृत्ति उत्पन्न हो जाती है। असलमें संसारके सुखों और भोगोंकी विशाल इमारतें ज्यों-ज्यों ढहती हैं, त्यों-ही-त्यों वह संसारके बन्धनसे मुक्त होकर प्रभुकी ओर बढ़ता है। अपनी ओर खींचनेके लिये ही प्रभु उसे दुःखका दान दिया करते हैं। एक भक्त बंग-कविने भगवान्‌की सूक्ति कही है—

जे करे आमारि आश। ताँर करि सर्वनाश॥
तबू जे छाड़े ना आश। ताँर हइ दासानुदास॥

'जो मेरी आशा करता है, मैं उसका सर्वनाश कर देता हूँ। इतनेपर भी जो मेरी आशा नहीं छोड़ता, उसका मैं दासानुदास बन जाता हूँ।'

बात भी ऐसी ही है। जबतक मनुष्य संसारके 'सर्व' के पीछे पागल है, तबतक उसे भगवान्‌की मधुर सुधि कैसे आयेगी? और भगवान्‌का स्मरण हुए बिना दुःखोंका आत्यन्तिक नाश सम्भव नहीं है। इसीलिये भगवान् ऐसे मनुष्यके भोगोंका हरण करके उसे अपनी ओर खींचते हैं। भगवान्‌ने कहा है—

यस्याहमनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनैः।
ततोऽधनं त्यजन्त्यस्य स्वजना दुःखदुःखितम्॥
स यदा वितथोद्योगो निर्विण्णः स्याद् धनेहया।
मत्परैः कृतमैत्रस्य करिष्ये मदनुग्रहम्॥

(श्रीमद्भा० १०।८८।८-९)

'जिसपर मैं कृपा करता हूँ, उसके धनको धीरे-धीरे छीन लेता हूँ। जब वह निर्धन हो जाता है, तब उसके घरके लोग—सगे-सम्बन्धी उसके दुःखाकुल चित्तकी कुछ भी परवा न करके उसे छोड़ देते हैं। उसको कोई पूछतातक नहीं। वह धनके लिये यदि फिर चेष्टा करने लगता है तो मैं अपनी कृपासे उसका वह उद्योग भी निष्फल कर देता हूँ। इस प्रकार बार-बार असफल होनेसे उसका मन धन कमानेसे हट जाता है। उसे दुःखरूप मानकर वह उससे अपना मुँह मोड़ लेता है और मेरे प्रेमी भक्तोंका आश्रय लेकर उनसे मित्रता करता है। (क्योंकि संसारमें असफल और सबके द्वारा परित्यक्त पुरुषको भगवान्‌के भक्त ही आश्रय देते हैं) तब मैं उसपर अपनी अहैतुकी कृपाकी वर्षा करता हूँ। (जिससे वह मुझमें लगकर मुझ सच्चिदानन्द ब्रह्मको प्राप्त कर लेता है।)'

इस प्रकार जगत्‌की दृष्टिमें अकिंचन बनाकर भगवान् उसे अपनी भक्ति देते हैं, तदनन्तर उसे आत्मदान करके स्वयं उसके सेवक बन जाते हैं। ऐसा भक्त फिर बाहरसे ही नहीं, भीतरसे भी 'अकिंचन' बन जाता है। उसका अपना एक भगवान्‌को छोड़कर और कोई कुछ रहता ही नहीं। ऐसा अकिंचन भक्त भगवान्‌को इतना प्रिय होता है कि भगवान् स्वयं उसकी सेवा करना चाहते हैं। भगवान् भक्तकी आराधना करते हैं। प्रेमास्पद प्रेमी बन जाते हैं। भगवान्‌ने अपने परमप्रिय भक्त उद्धवसे कहा है—

न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शङ्करः।
न च सङ्कर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथा भवान्॥
निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम्।
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः॥

(श्रीमद्भा० ११।१४।१५-१६)

'उद्धव! मुझे तुम-जैसे प्रेमी भक्त जितने प्रिय हैं, उतने प्रिय मेरे पुत्र ब्रह्मा, आत्मारूप शंकर, सगे बड़े भाई बलरामजी और नित्य अर्द्धांगिनी श्रीलक्ष्मीजी भी नहीं हैं। यहाँतक कि मेरा आत्मा भी उतना प्रिय नहीं है, जितने मेरे प्रेमी भक्त मुझे प्यारे हैं। उद्धवजी! जो किसी चीजकी बाट नहीं देखते, निरन्तर मेरे मननमें ही लगे रहते हैं, सर्वथा शान्त रहते हैं, किसीसे वैर नहीं रखते और सबमें समभावसे केवल मुझको ही देखते हैं। इस प्रकारके भक्तके पीछे-

पीछे मैं निरन्तर इसलिये घूमा करता हूँ कि उसके चरणोंकी धूलि उड़कर मुझपर पड़ जाय और मैं पवित्र हो जाऊँ।'

भक्त भगवान्‌के भजनमें निरन्तर सब कुछ भूला रहता है तो भगवान् उस भक्तका भजन करते हैं—

भरत सरिस को राम सनेही। जगु जप राम रामु जप जेही॥

(रा०च०मा० २।२१८।६)

हाँ, भक्त यह कभी नहीं सोचता कि मैं इसलिये भक्ति करूँ कि भगवान् मेरे सेवक बन जायँ। सच्चा भक्त तो भगवान्‌का भजन केवल इसीलिये करता है कि उससे भजन किये बिना रहा ही नहीं जाता। उसका भजन बस, भजनके लिये ही होता है। उसे न भुक्तिका पता है, न मुक्तिका। उसका चित्त सहज ही निरन्तर भजनमें रमता है, उसे उसीमें मजा आता है। इसलिये वह उसीमें सन्तुष्ट और मस्त रहता है। भगवान् अपने जिस कृपापात्र लौकिक धनी-मानी भक्तको वैभवके मायाजालसे छुड़ाकर आत्मदान करना चाहते हैं, उसीपर इस तरीकेसे कृपा किया करते हैं।

संसारकी धन-सम्पत्ति—जो प्रायः नरकोंमें ले जानेवाली ही होती है—नष्ट हो जाय और उसके बदलेमें यह परम धन मिल जाय तो इससे बढ़कर और कौन-सा लाभ हो सकता है? और इससे बढ़कर मानव-जीवनकी सफलता भी और क्या हो सकती है?

इससे कोई यह न समझे कि भगवान् सभी भक्तोंका धन-मान हरण करते हैं या किसीको भी धनैश्वर्य नहीं देते। वे धनैश्वर्य भी देते हैं, और प्रचुर परिमाणमें देते हैं—सुदामाको दिया, विभीषणको दिया, सुग्रीवको दिया, ध्रुवको दिया, उग्रसेनको दिया और भी न मालूम कितनोंको दिया। पर यह सब देकर भी उनको अभिमान नहीं दिया। वे भगवत्कृपासे सदा जलमें कमलपत्रकी भाँति धनमें रहकर भी धनसे अलग ही रहे। इधर बेचारे नारदजीको विवाह नहीं करने दिया। बलिका प्राप्त किया हुआ स्वर्गराज्य छीन लिया! अवस्थाके अनुसार ही व्यवस्था हुआ करती है। चतुर चिकित्सक रोगका निदान करके वही दवा देता है, जिससे रोगी रोगसे मुक्त हो जाय। फिर भगवान्‌की दी हुई तो कड़वी दवा भी—भगवान्‌का परिचय मिलनेपर—मीठी ही मालूम होती है। बलिने स्वयं कृतज्ञता प्रकट करते हुए भगवान्‌से कहा है—

अहो प्रणामाय कृतः समुद्यमः
प्रपन्नभक्तार्थविधौ समाहितः।
यल्लोकपालैस्त्वदनुग्रहोऽमरै-
रलब्धपूर्वोऽपसदेऽसुरेऽर्पितः॥

(श्रीमद्भा० ८।२३।२)

'अहो प्रभो! मैंने आपको पूरा प्रणाम भी नहीं किया, प्रणाम करनेकी चेष्टामात्र की। इसीसे मुझे वह फल मिला, जो आपके चरणोंके शरणागत भक्तोंको मिला करता है। बड़े-बड़े लोकपाल और देवताओंपर आपने जो कृपा कभी नहीं की, वह मुझ-जैसे नीच असुरको सहज ही प्राप्त हो गयी।'

इस प्रसंगमें भगवान्‌ने धनादिके हरणका जो कारण बतलाया है, उसे तुम भैया! श्रीमद्भागवतके आठवें स्कन्धके २२वें अध्यायमें जरूर पढ़ना। कितने दयालु हैं, भगवान् जीवोंको किस तरह दुःखार्णवसे निकालकर नित्य सुख-समुद्र अपने चरणोंकी ओर खींचते हैं।

पता नहीं, तुम्हारे उन मित्रपर भी भगवान् इसी प्रकार कृपा करना चाहते हों। उन्हें घबराना नहीं चाहिये और भगवान्‌के मंगल विधानके कल्याणमय परिणामपर विश्वास करके भगवान्‌का स्मरण करते हुए यथायोग्य चेष्टा करनी चाहिये।

यदि घबराहट ही हो और अपनी इसी वैभवकी स्थितिमें रहनेका मोह हो तो भी सर्वलोकमहेश्वर अनन्त ऐश्वर्य-सागर भगवान्‌से ही प्रार्थना करनी चाहिये। अब जाँचना ही है तो उन्हींको क्यों न जाँचा जाय। जो सर्वसमर्थ, सर्वज्ञ, सर्वैश्वर्यसम्पन्न होनेके साथ ही स्वभावसे ही परम उदार और सबके परम सुहृद् भी हैं। उनसे याचना करनेपर उनकी कृपा होगी तो याचनाकी वस्तु भी मिल जायगी और फिर माँगनेकी वृत्ति—कामना-वासना भी सदाके लिये नष्ट हो जायगी।

जग जाचिअ कोउ न, जाचिअ जौं
इक जाचिअ जानकी जानहि रे।
जेहिं जाचत जाचकता जरि जाइ,
जो जारति जोर जहानहि रे॥

कदाचित् उन सर्वज्ञ प्रभुने अकल्याण समझकर माँगी हुई वस्तु नहीं दी तो उसके बदलेमें वे ऐसे विलक्षण शान्तिके और संतोषके अत्युच्च स्तरपर चढ़ा देंगे कि फिर अभाव-बोध होगा ही नहीं, प्रतिकूलताके दर्शन किसी भी स्थितिमें होंगे ही नहीं और सहज ही दुःख-बीजका नाश हो जायगा।

किसी भी इच्छासे—अनिच्छासे, लौकिक या पारलौकिक किसी भी लाभके लिये एकमात्र भगवान्को ही पुकारना चाहिये। भोगी और त्यागी जो वस्तुएँ चाहते हैं, उन सबका इन छः में समावेश हो जाता है—ऐश्वर्य, यश, श्री, धर्म, वैराग्य और ज्ञान। ये छहों चीजें एक जगह कहीं नहीं मिलतीं और कहीं कोई-सी मिलती भी है तो वह अपूर्णरूपमें। फिर, जिसके पास है, उसकी इच्छा है वह दे या न दे। परंतु भगवान् ऐसे हैं कि उनमें ये छहों वस्तुएँ समग्ररूपसे हैं—अनन्त हैं।* और वे इतने उदार हैं कि माँगनेपर चाहे सो दे भी देते हैं। देनेमें उनका कोई नुकसान भी नहीं होता; क्योंकि उनकी पूर्णता ही ऐसी है—जो सब कुछ दे देनेपर भी उतनी ही बनी रहती है—

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

यह उनका स्वरूप है। अतएव सभी तरहसे एकमात्र भगवान्को ही सर्वसमर्थ, सर्वतः परिपूर्ण और अपना अहैतुक मित्र मानकर उन्हींका आश्रय ग्रहण करना चाहिये। इसीमें कल्याण है। शेष प्रभुकृपा।

कहानी—

विभाजनका विष

(श्रीरामेश्वरजी टांटिया)

राजस्थानका उत्तर-पूर्वी हिस्सा पंजाबसे मिला हुआ है। वहाँपर देशके विभाजनके समय काफी संख्यामें मुसलमान परिवार थे। हिन्दू-मुलसमानोंमें आपसमें भाई-चारा था, एक-दूसरेके सुख-दुःख, विवाह-शादी और त्यौहारमें बड़े जतन और प्रेमसे हिस्सा लेते थे।

हिन्दुओंकी होलीमें मुसलमान डफोंपर धमाल गाते थे और मुसलमानोंके ताजियोंमें मर्सिये सुनकर हिन्दुओंकी आँखोंमें आँसू आ जाते थे। वे भी नये-नये कपड़े पहनकर ताजियोंके जुलूसमें शामिल होते थे, बच्चोंके रोग-निवारणके लिये उन्हें ताजियोंके नीचेसे निकालते थे। मुझे याद है हमारे पड़ोसी मुसलमान बच्चे हमें यह कहकर चिढ़ाते थे कि देखो हमारे ताजियोंपर कितना सुन्दर गोटा-किनारी लगा है, जबकि तुम्हारे हनुमान्जीका मुँह बन्दर-सा है और गणेशजीका हाथी-सा। हम जब दादाजीसे उनकी शिकायत करते, तो वे हमें बहलानेके लिये उन्हें झूठ-मूठ डाँट देते थे।

हमारे घरके पीछेकी तरफ घासी लीलगरका छोटा-सा घर था। हम उन्हें बराबर घासी भैया कहकर पुकारते थे। वे लोग भी दादीजीको माँजी कहते। उनके यहाँ जमाई आता, तो दादीजी दरी-गद्दा और निवारके पलंग भेज देतीं। उस समय यद्यपि बाहरसे छुआछूत थी, पर दिलोंमें प्यार था।

१९४७ ई० के शुरुआतकी बात है। देश-विभाजनकी

* ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः। ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा॥
ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यवीर्यतेजांस्यशेषतः। भगवच्छब्दवाच्यानि विना हेयैर्गुणादिभिः॥ (वि० पु० ६।५।७४, ७९)
'परिपूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य—इन छः प्रकारकी महान् शक्तियोंका नाम भग है। हेय गुण अर्थात् प्राकृत गुणोंके लेशसे रहित परिपूर्ण ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य और तेज—ये भगवत्-शब्दवाच्य हैं।' ऐश्वर्यादि छः प्रकारकी महाशक्तियोंसे सम्पन्न सच्चिदानन्दघनविग्रह ही श्रीभगवान् हैं।

चर्चा अन्तिम दौरमें थी। अंग्रेजी सरकारने भारत और पाकिस्तान—दो अलग-अलग मुल्क बनाकर उन्हें शासन सौंपनेका मसौदा बना लिया था।

पश्चिमी पंजाबसे बड़ी संख्यामें हिन्दू भागकर आ रहे थे और पूर्वी पंजाब तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेशसे मुसलमान लाहौर और सिन्धकी तरफ जा रहे थे।

इसका कुछ असर राजस्थानके गाँवों-कस्बोंके बाशिन्दोंपर भी पड़ रहा था। कलकत्तेका भीषण दंगा हो चुका था। मुख्यमन्त्री सुहरावर्दीकी सीधी कार्यवाहीके कारण सैकड़ों हिन्दुओंका कत्लेआम हो चुका था, ये सब खबरें यहाँ भी वहाँसे आये हुए लोग बढ़ा-चढ़ाकर सुनाते रहते थे।

आखिर १५ अगस्त, १९४७ ई० को देशके दो टुकड़े हो गये। इसके थोड़े दिनों बाद पश्चिम पंजाबमें बड़े पैमानेपर जिहाद हुआ। वहाँसे जो ट्रेनें अमृतसर-जालन्धर आतीं, उनमें सैकड़ों घायल हिन्दू रहते। युवती स्त्रियोंको लाहौरमें जबरन उतार लिया जाता। ये सब समाचार अतिरंजित होकर दिल्ली, हरियाणा और राजस्थानतक फैले।

राजस्थान और पंजाबकी सीमापर पाटण नामका एक कस्बा है। उस समय वहाँकी जनसंख्या तकरीबन दस हजार रही होगी, जिनमें तीन चौथाई हिन्दू और एक चौथाई मुसलमान थे। मुसलमानोंमें अधिकांश गरीब थे—लखारे, रँगरेज, लोहार, कुँजड़े तथा अन्य मजदूरी करनेवाले। उनकी आजीविका हिन्दू महाजनोंपर निर्भर थी।

सिन्ध और पंजाबमें पाकिस्तानी मुसलमानोंके अत्याचारोंसे पीड़ित होकर कुछ हिन्दू शरणार्थी उस गाँवमें आये। उनके अधिकांश स्वजनोंको वहाँ मौतके घाट उतार दिया गया था, बाकी बचे हुए किसी प्रकार दीन-हीन दशामें वहाँ पहुँचे थे। उनके मनमें प्रतिहिंसाकी ज्वाला धधक रही थी।

उनमेंसे किसी युवकने एक मुसलमान लड़कीके साथ अशोभनीय व्यवहार किया। इस प्रकारकी घटना राजस्थानके गाँवोंके लिये नयी थी। गाँवकी बहन-बेटीको धनवान् और गरीब, सब बहन-बेटी ही समझते थे।

लड़कीके घरवालोंने पंचोंके सामने गुहार की। युवक और उसके सम्बन्धी जोश और क्रोधमें थे। उनका कहना था कि उनकी बहन-बेटियोंके साथ पाकिस्तानियोंने इससे भी कहीं अधिक अत्याचार किये हैं।

लड़कीके भाइयोंने मौका देखकर सिन्धी युवकको घायल कर दिया। सारे गाँवमें खबर फैल गयी कि वह मर गया है। शरणार्थी लोग और गाँवके कुछ हिन्दू युवक उस सिन्धी युवकके घरके सामने इकट्ठे होने लगे। वहाँसे एक बड़ा जुलूस बनाकर वे लोग मुसलमानी मुहल्लोंकी तरफ गये। रास्तेमें उनके घर और दुकानें जला दी गयीं। छिट-पुट खून-खराबेकी घटनाएँ भी होने लगीं।

सेठ श्यामलाल वहाँके एक प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। गाँवमें उनकी बनवायी धर्मशाला, कुआँ और रघुनाथजीका मन्दिर था। उनके घरके पीछेकी ओर रहीमा नामक एक मुसलमान रँगरेजका घर था। रहीमाकी माँ, पत्नी और तीन-चार छोटे भाई-बहन थे। दंगाइयोंके उसके घरकी तरफ बढ़नेकी खबरें आ रही थीं। उसकी पत्नीके चार-पाँच दिनों पहले ही बच्चा हुआ था, वह सौरीमें थी। प्रत्यक्ष मृत्युको सामने आयी देखकर घरके लोग भयसे काँप रहे थे। रहीमाकी बहू नन्हें बच्चेको गोदमें लेकर श्यामलालजीकी माँजीके पास आयी और उनके पैर पकड़कर रोती हुई कहने लगी, 'माँजी! हम सब दो पीढ़ियोंसे आपके पास रहते हैं, आपका दिया ही खाते हैं, अब हम इन बच्चों और बूढ़े ससुरको लेकर कहाँ जायें, आपकी शरणमें आ गये हैं, मारो चाहे उबारो।'

रहीमाके घरवालोंको सेठजीके घरके पीछेके दरवाजेसे लाकर नीचेके तलघरमें छिपा दिया गया। यद्यपि

दंगाइयोंको शक तो हो गया था, पर लालाजीके 'ना'



कहनेपर उनके घरमें जाकर खोज करनेकी हिम्मत किसीकी नहीं हुई।

दंगा शान्त होनेपर उन्हें एक रात विश्वस्त आदमियों और सवारियोंके साथ पासके पुलिस थानेमें पहुँचा दिया गया। वहाँसे वे शायद किसी प्रकार पाकिस्तान पहुँच गये।

यह खबर जब गाँवके लोगोंको मिली तो उनमेंसे बहुत-से लोग श्यामलालजीपर नाराज हुए, बुरा-भला भी कहने लगे, परंतु सारा उलाहना सुननेके बाद उनका एक ही जवाब था कि जो कुछ मैंने किया, माँजीकी आज्ञासे किया है। उनकी यह मान्यता है कि एकके कसूरका दूसरोंको दण्ड क्यों दिया जाय! यदि पाकिस्तानी लोगोंने हिन्दुओंपर जुल्म किये, तो उसके लिये गरीब रहीमाके अबोध बच्चोंकी हत्या करनेसे क्या इसका बदला चुक जायगा?

१९५६ ई० में एक बार मुझे इस गाँवमें जानेका मौका मिला। मुसलमानोंके घर या तो टूटे-फूटे और उजाड़ पड़े थे या फिर शरणार्थियोंद्वारा दखल कर लिये गये थे। वहींपर मैंने रहीमाकी कहानी सुनी थी।

संयोगकी बात है कि १९६४ ई० में विश्वयात्रा करता हुआ मैं पाकिस्तानमें कराची पहुँचा। वहाँके रिजर्व बैंकके दफ्तरमें गया हुआ था। मैंने देखा—एक बूढ़ा मुसलमान मुझसे बात करना चाहता है। एक कोनेमें मुझे ले जाकर धीरेसे सहमते हुए कहने लगा—बातचीतसे लगता है आप राजस्थानी हैं। फलाँ जिलेके गाँवमें मेरी बेटी है। सुना है उसके एक बच्चा भी हुआ है, परंतु अभीतक अपने नातीको नहीं देख पाया हूँ। बेटी-दामादको देखे भी १७ वर्ष हो गये। मेरे हाथमें बीस रुपये थमाते हुए कहने लगा कि बड़ी मेहरबानी होगी, अगर आप इन रुपयोंसे बच्चेके लिये कुर्ता-टोपी और थोड़ी-सी मिठाई वहाँ भिजवा देंगे, जितनी तनख्वाह मिलती है, उसमें खर्च चलना भी मुश्किल है, नहीं तो बेटीको भी कुछ भेजना चाहता था। मैंने देखा—उसकी आँखें गीली हो आयी हैं। मैंने बताया कि यह गाँव मेरे सीकर जिलेमें ही है—चीजें तो भिजवा दूँगा, कभी मौका मिला तो तुम्हारी बेटीसे मिलकर राजी-खुशीकी खबर भी दे दूँगा। देखा—बूढ़ेको मेरी बात सुनकर बहुत सान्त्वना मिली है।

वृद्धसे बात करते हुए मुझे आठ वर्ष पहलेकी रहीमाकी बात याद आ गयी। वह भी शायद इसी प्रकार अपने गाँव और घरसे दूर पाकिस्तानके किसी कस्बेमें नौकरी करता होगा। उसे भी शायद इसी प्रकार अपनी जन्मभूमि और छोटेसे घरकी याद आती होगी।

'श्रीराम, जय राम, जय जय राम'

(श्रीगोवर्धननाथजी टंडन)

जब तेरा मन व्याकुल होए,
दुःखके बादल, घिर आएँ।
उमड़ पड़ें, आँखोंसे आँसू,
घोर अँधेरा, छा जाए॥

प्राणहीनता घायल कर दे,
उच्चारण करना, दिव्य नाम।
तेरे सारे, दुःख हर लेगा,
'श्रीराम, जय राम, जय जय राम'॥

कृपानुभूति

आंजनेयकी अनूठी कृपा

घटना अभी हालकी ही है। मैं अपने पुत्रको पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुरमें छोड़कर अपने घर वापस महोबा (उ०प्र०) आ रहा था। ३१ अगस्त, सन् २०१२ ई० को मैं प्रात: १० बजकर ३० मिनट पर जौनपुर जंक्शनपर पहुँच गया। पहुँचनेपर ज्ञात हुआ कि दोपहर बारह बजकर आठ मिनटपर इण्टरसिटी एक्सप्रेस वाराणसी जायगी। मैंने वाराणसीतकका टिकट ले लिया, यह सोचकर कि वहाँसे घर चला जाऊँगा, तभी एक सज्जन मेरे पास आये और बोले—ठीक एक बजे गोदान एक्सप्रेस है, जो आपको इलाहाबादके रास्ते मानिकपुर भेज देगी। यह गाड़ी मानिकपुर जंक्शनपर खड़ी भी होती है, फिर क्या था मैंने तत्काल ही मानिकपुर का टिकट ले लिया और पूर्वमें लिया गया वाराणसीका टिकट एक सज्जनको दे दिया।

दोपहर ठीक एक बजे गोदान एक्सप्रेस जौनपुर जंक्शनपर खड़ी हुई। गाड़ीमें तिल रखनेकी भी जगह नहीं थी, किसी तरह पीछेके एक डिब्बेमें केवल एक पैर रखनेकी जगह बड़ी अनुनय-विनयके साथ मिली। धीरे-धीरे मैं अन्दर गया और एक सीटके नीचे बैठकर यात्रा प्रारम्भ की। यह गाड़ी इलाहाबादतक प्रत्येक स्टेशनपर रुकती हुई चलती है। मैं शाम पाँच बजकर पन्द्रह मिनटपर इलाहाबाद आ गया। पुनः छः बजकर पन्द्रह मिनटपर यह गाड़ी कुर्लाके लिये प्रस्थान करने लगी। ठीक पैंतालिस मिनट चलनेपर मैंने अपने सहयात्रीसे कहा कि भाई साहब! आगे मानिकपुर स्टेशनपर मुझे उतरना है, अत: जगह दे दीजिये ताकि मैं दरवाजेपर जा सकूँ। मेरा इतना कहना था कि सभी लोग हँसने लगे, मैं आश्चर्यचकित हुआ कि आखिर क्या बात है, जो सभी लोग हँस रहे हैं! थोड़ी देर बाद एक मुसलमान सज्जन, जो मुझसे उम्रमें बड़े थे, बोले—'भाई साहब! यह गाड़ी मानिकपुर स्टेशनपर नहीं रुकेगी। मैं हमेशा इसीसे यात्रा करता हूँ। यह इलाहाबादसे चलकर सीधी मैहर (सतना) म० प्र० रुकती है।' यह सुनकर मैं हक्का-बक्का रह गया। गाड़ी अपनी रफ्तारसे दौड़ी चली जा रही थी और मेरे अन्तर्मन की व्यथा मुझे बेचैन कर रही थी। उस समय मुझे मेरे इष्ट हनुमन्तलालका ध्यान आया और मैंने उनका जप आरम्भ कर दिया। थोड़ी देर चलनेपर एक जगह गाड़ी खड़ी हुई और मैंने वहींपर उतरनेका निश्चय कर लिया, परंतु जो मुसलमान सज्जन मेरे साथ यात्रा कर रहे थे, उन्होंने उतरनेसे मना कर दिया, वे बोले—'भइया! यह बड़ा भयानक जंगल है, यहाँपर उतरना खतरेसे खाली नहीं है।' इतना सुनते ही मेरे होश उड़ गये। सोचा कि हनुमन्तलालजीने कृपा तो की, परंतु यह अधूरी है। वे जो चाहें कर सकते हैं और गाड़ी पुनः दौड़ने लगी। मेरे सामने ही मेरा गन्तव्य स्टेशन मानिकपुर निकल गया और मैं निहारता रहा। मैं सोच रहा था कि कल मेरे विद्यालयका क्या होगा, मैं केवल दो दिनके अवकाशपर ही था। मैं सोच रहा था और अर्न्तमनमें श्रीहनुमन्तलालजीका जप भी कर रहा था। आगे चलकर तीन-चार स्टेशन बहुत ही बेचैनीमें शीघ्रता-पूर्वक निकल गये। इसके बाद गाड़ीमें एक छोटा-सा झटका लगा और गाड़ी धीमी होनी शुरू हुई। मैंने गेटपर खड़े उन मुसलमान सज्जनसे पूछा कि क्या कोई स्टेशन आ गया है, उन्होंने झाँककर देखा और बोले, हाँ! कोई छोटा-सा दीपक टिमटिमा रहा है, हो सकता है कोई स्टेशन हो। इतनेमें गाड़ी खड़ी हुई, मैं चिल्लाया मेरा बैग मुझे दे दो मुझे उतरना है। बैग हाथमें आते ही मैं गेटकी तरफ चला तो एक सज्जन बोले—प्लेटफार्म उधर है। मैंने शीघ्रतापूर्वक दूसरे गेटसे बैगको नीचे डाल दिया और गाड़ीसे कूद पड़ा। मेरे कूदते ही गाड़ी बड़ी जोरसे चलने लगी और मैं हतप्रभ देखने लगा।

मुड़कर मैंने देखा कि दूसरी पटरीपर एक और गाड़ी धीरे-धीरे चल रही है, उसमें बैठे एक बालकसे मैंने पूछा कि यह गाड़ी कहाँ जा रही है? उसने उत्तर दिया—मानिकपुर। यह इटारसीसे चलकर मानिकपुर जा रही है, आधे घण्टेमें आपको मानिकपुर भेज देगी, मैं तत्काल ही उसमें सवार हुआ और गाड़ी दौड़ने लगी।

अब समझमें आ रहा था कि मेरे इष्ट श्रीहनुमन्तलालजीने मेरी प्रार्थनाको स्वीकार करके मेरे लिये क्या व्यवस्था कर दी थी! यह उनकी कृपाका ही परिणाम है कि मैं सकुशल घर वापस आकर अपने विद्यालयपर समयसे पहुँच सका।—हरिश्चन्द्र मिश्र

पढ़ो, समझो और करो

(१)
संत-वाणी

घटना सन् १९७० ई० की है। मैं शहडोलसे रीवाँ आ रहा था। बस-स्टैण्ड शहडोलमें खासी भीड़ थी। खाली गाड़ियाँ बड़ी कठिनाईसे मिल रही थीं। मुझे रीवाँ पहुँचनेकी उतावली थी, अतः मैं कभी इस बसको झाँकता तो कभी उस बसको। इस प्रकार अशान्त-मन बस-स्टैण्डका चक्कर लगा रहा था कि एक बस आकर खड़ी हुई। यात्री बेतहाशा उस ओर दौड़ पड़े। पर मेरे पहुँचते-पहुँचते वह बस भी पूरी तरह भर गयी। फिर भी गाड़ीका परिचालक किसीको मना नहीं कर रहा था। मैंने भी साहस जुटाया और गाड़ीमें घुसने लगा। मेरे एक पड़ोसी मित्र जो मेरे साथ थे (उन्हें रीवाँ नहीं जाना था, वे बस-स्टैण्डतक आये थे), बोले—'मास्टर साहब! आप इस बससे न जाइये।' 'गाड़ी बड़ी कठिनाईसे मिली है, लगनका समय है, गाड़ी शीघ्र मिलनेकी सम्भावना नहीं।' मैंने उनकी सलाहपर विरोध प्रकट किया; किंतु वे फिर मुझे समझाते हुए जोर देकर बोले—'मेरी बात मानिये, यात्रा शुभ नहीं है।' 'शुभ' शब्द मुझे खटक गया। मैंने उत्तर नहीं दिया। इसलिये कि उनकी बातोंका सदा स्वागत करता रहा हूँ। केवल मैं ही नहीं, अपने पास-पड़ोसके अधिकतर लोग। उसका कारण था, वास्तवमें वे संयम-नियमके बड़े पक्के, सत्यवादी और मितभाषी हैं। संकटके समय भी कभी उन्हें बातों या विचारोंको बदलते नहीं देखा गया। इतना ही नहीं, तन-मन-धनसे अपनी क्षमताके अनुसार वे दूसरोंका उपकार भी करनेके लिये उद्यत रहते हैं। इस निष्ठाके कारण उनका एक व्यक्तित्व ही बन गया है, जो दूसरोंपर सहज अधिकार कर लेता है और लोग उन्हें संतजी कहने लगे हैं।

संतजीकी सलाह मानकर यद्यपि मैंने बसमें बैठनेका विचार बदल दिया था, पर मन पश्चात्तापकी नदीमें डूब रहा था कि बस कब मिलती है, कब नहीं। लगभग आधा घण्टा बीता होगा कि एक खाली बस आकर खड़ी हो गयी। उसमें आरामसे जगह मिल गयी। संतजीसे मैंने हँसते हुए कहा—'अब आगे कहिये!' 'ठीक है, यात्रा शुभ है' संतजी बोले और दिल खोलकर हँसे। साथ ही मैं भी हँसा।

रीवाँ पहुँचनेमें लगभग चालीस किलोमीटर शेष रहा होगा कि अचानक बस रुक गयी। यात्री बेतहाशा बससे उतरने लगे। मैंने सोचा, क्या बात है? खिड़कीसे झाँका, यह तो छुहिया पहाड़ है, और-और········· मुझसे अब बसमें बैठे नहीं रहा गया। उतर पड़ा! नीचे देखा! सड़कके नीचे ढालूपर उलटी-पलटी एक बस पड़ी थी। मेरे होश उड़ गये। यह तो वही बस है, जिसपर चढ़नेसे संतजीने रोका था। कुछको चिरनिद्रामें सोये और कुछको चीखते देखकर लोगोंका हृदय विदीर्ण हो रहा था। मेरी आँखोंके सामने संतजीका सौम्य चेहरा घूम गया, उनकी वाणी कानोंमें गूँजने लगी। सोचा, वास्तवमें संत-वाणी ईश्वरकी वाणी होती है।—श्यामराज पाण्डेय

(२)
अपरिचितकी सहयोगी भावना

बात अगस्त, सन् १९७१ ई० की है—जब मैं एक साक्षात्कारके लिये उन्नावसे फैजाबाद गया था। मेरे पास एक पत्र था, जिससे मैं वहाँ सुविधापूर्वक ठहर सकता था, किंतु लखनऊसे चलनेवाली एक्सप्रेस गाड़ी रातमें एक बजेके लगभग फैजाबाद स्टेशनपर पहुँची। अतः रातमें किसीके यहाँ जाना मुझे उचित न लगा। उस दिन शामसे ही बादल घिरे थे, किसी भी क्षण भीषण वर्षा होने की आशंका थी। लखनऊसे ही बूँदा-बाँदी प्रारम्भ हो गयी थी। जैसे ही गाड़ी फैजाबाद पहुँची, तेज वर्षा शुरू हो गयी। मैं मुख्य प्लेटफार्मतक पहुँचते-पहुँचते काफी भीग गया। मेरे पास बैगमें केवल एक जोड़ी कपड़े और थे, जो साक्षात्कारके समय पहननेके लिये रख लिये थे। पानी रुकनेका नाम ही न ले रहा था। मैं एक बेंचपर बैठकर पानी बन्द होनेकी प्रतीक्षा करने लगा। जून-जुलाई दो महीने मैं बुखारसे पीड़ित रह चुका था। कमजोरी तो थी ही, उसपर पानीसे भीग जाना और गीले कपड़े पहने रहना मेरे लिये कष्टप्रद हो गया। मुझे हलका ज्वर हो आया और कँपकँपी प्रारम्भ हो गयी। उस स्थितिमें वहाँ मेरा कोई भी सहायक न था, जिससे मैं अपने कष्टकी बात कहता।

थोड़ी देर बाद पानी कुछ देरके लिये रुक गया।

प्लेटफार्मपर भीड़ कम हुई, फिर भी इस समय मैं कहाँ जाता और क्या कर सकता था? नैराश्य और दुःखके संवेगमें मैंने अनजाने ही, मन-ही-मन भगवान् आशुतोषकी प्रार्थना प्रारम्भ कर दी और मानसकी इस चौपाईकी बार-बार आवृत्ति करने लगा—

आसुतोष तुम्ह अवढर दानी। आरति हरहु दीन जन जानी॥

लगभग पन्द्रह-बीस मिनटतक ज्वर तथा ठण्डकसे काँपते हुए मैंने भगवान् शिवसे प्रार्थना की होगी कि तभी लगभग ४५-५० वर्षीय रेलवेके चतुर्थ श्रेणीका एक दयालु कर्मचारी मेरे पास आया और बोला—'भैया! क्यों काँप रहे हो, भीगे कपड़े क्यों पहने हो, कहाँ जाना है आपको?' मैंने उसे अपनी सारी स्थिति समझा दी। वह बोला—'मैं आपको बहुत देरसे यहाँ बैठे हुए देख रहा था। आप मेरे निवासस्थानपर चलिये। मेरी ड्यूटी समाप्त हो गयी है। कुछ देर आप वहीं आराम करें।' मेरे सामने अन्य कोई विकल्प भी न था। अतः भगवान् शंकरका स्मरण करता हुआ विवशतावश ही उस कर्मचारीके साथ स्टेशनके पास बने हुए रेलवे क्वार्टरोंमेंसे एकमें चला गया। वहाँ जाकर उसने मोमबत्ती जलायी। कपड़े उतारनेके लिये गमछा दिया और तुरंत स्टोव जलाकर चाय बनाना आरम्भ कर दिया। मुझे लगा कि वह वहाँ अकेला ही रहता था। मैंने गीले कपड़े उतारे और चाय ली, पश्चात् चारपाईपर आराम करनेके लिये लेट गया। पर नींद कहाँ थी। दो घण्टे बिताकर प्रातः चार बजे ही मैंने उस दयालु कर्मचारीसे सप्रेम कृतज्ञता ज्ञापितकर विदा ली। उसने चलते समय शुभकामना व्यक्त की—'भगवान् आपकी रक्षा करें, आप सफल हों।' यद्यपि वर्षाकी बूँदें उस समय भी पड़ रही थीं तथापि अब मैं अपने साथमें लाये हुए पत्रसे सम्बद्ध व्यक्तिके निवास-स्थानके (पते)-की ओर चल पड़ा।

उस दिनके उन संकटपूर्ण क्षणोंको और भगवान् आशुतोषकी प्रेरणासे सम्भवतः उस दयालु सज्जनद्वारा की गयी सहायता-सहयोगकी बातको मैं कभी नहीं भूल सकता। मेरा विश्वास है कि यह मात्र संयोग न होकर भगवान् शंकरकी ही कृपा-करुणा थी, जिसने मुझे उस असहाय स्थितिमें सनाथ किया। सचमुच ही कैसे सच्चे और सार्थक हैं उनके—'आशुतोष' और 'दीनानाथ' नाम!—**डॉ० धर्मध्वज त्रिपाठी**

(३)

प्रेमकी भूखी गोमाता

मैं तब पश्चिम निमाडगंज चौधरी भवन जबलपुरमें रहती थी। घरमें मेरे माता-पिता और दादाजी थे। पिताजी तब आर्मी हेड क्वार्टर जबलपुरमें सेवारत थे। उस घरमें चार कमरे और एक आँगन था। हमने मोगरा, शेवन्ती, गुलाब आदि फूलोंके पौधे आँगनमें लगाये थे।

मेरी उम्र उस समय ११-१२ वर्षकी थी। स्कूलकी छुट्टीका दिन था। आँगनकी घास निकालकर मैं बाजूमें ढेर करती जा रही थी। मेरा ध्यान उसी काममें लगा था। अचानक एक लाल रंगकी गाय आकर घासको खाने लगी। जब वह मेरे बिलकुल पास ही रखी घासको खाने लगी तो मैं वहाँसे उठकर घरकी खिड़की और दरवाजेके बीचकी दीवारके पास डरी सहमी खड़ी हो गयी। उस गायको मेरे उठते ही मुझपर गुस्सा आया, वह घासको छोड़कर मुझे मारने आयी। मेरे पेटके दोनों ओरकी कमरकी हड्डियोंपर उसने अपने सींग टिकाकर मुझे दीवारके पास ढकेलकर खड़ा किया। मैं डरकर माँको पुकारने लगी। वह गाय हट ही नहीं रही थी। मैंने घरमें पूजा करती हुई माँके आनेतक राह देखनेके बजाय उस गायके दोनों सींगोंको दोनों हाथोंसे पकड़कर पीछे ढकेलनेकी कोशिश की। वह गाय भी गुस्सा कम होनेके कारण वहाँसे बाहर चली गयी। दो-चार दिनोंके बाद वही गाय गेटसे बाहर आकर रँभाने लगी। ऐसा लगता था, जैसे मुझे बुला रही हो। मैं घरमें भीतर थी। उसने मुझे देखा सिर हिलाया, मैंने अपने हाथ कानोंसे लगाकर गाय-जैसे हिलाती है वैसा किया तो उसने भी अपने दोनों कान मुझे देखकर हिलाये, सिर भी हिलाया। उसके बाद मैंने उसे बाहर आकर रोटी दी। उसने रोटी खायी और जीभसे मेरा हाथ चाटा। फिर क्या था, सन् १९७१ से १९७९ ई० तक यह रोजका क्रम बन गया। रोज यही सब क्रमानुसार होता था। वह मुझसे और मैं उससे प्रेम करने लगी थी। सन् १९७८ ई० में हम सब—मैं, माँ और पिताजी दक्षिण भारत घूमनेके लिये गये, उससे पहले पिताजी दादाजीको डॉ० बुआके पास टिमरनी (हरदाके पास) पहुँचाने गये थे; क्योंकि अब उन्हें यात्रा कराना वृद्धावस्थाके कारण सम्भव नहीं हो सकता था। २४ दिनतक घरमें कोई भी नहीं था। २४ दिनों बाद हम

सब घर वापस लौटे। घरका दरवाजा खुला देखते ही वह गाय तेजीसे हमारे घर आयी दौड़ लगाकर और आकर घरके गेटके बाहर खड़ी हो गयी। मैंने बिना देर किये उसे रोटी लाकर खिलायी, रोटी खाकर वह मुझे एकटक देख रही थी। उसकी बड़ी-बड़ी काली आँखोंसे मोटे-मोटे आँसू बहने लगे। मेरे गलेसे गर्दन टिकाकर वह रो रही थी फिर मैंने भी भावुक हो उसे हाथोंसे अपने पास खींचकर पकड़ लिया उसके आँसू देख मैं भी उससे लिपटकर रोने लगी। हमारा यह प्रेमभाव देख रही हमारी पड़ोसकी चाची बोलीं—जब तुम लोग यहाँ नहीं थे, तब तुम्हारे घर यह रोज नियमसे आती थी। मैं आश्चर्यमें डूबी थी, प्रेमभावमें मगन थी, उस गायको पूरा संतोष मिलते ही वह फिर लौट गयी। उसकी मालकिनके उसे बेचनेतक वह रोज आया करती थी। इस घटनासे सिद्ध होता है कि मनुष्य ही नहीं पशु-पक्षी भी प्रेमके भूखे होते हैं और वे हमारे प्रेमको पहचानते भी हैं।—**सौ० मधुवंती मकरंद मराठे**

(४)

परद्रव्येषु लोष्टवत्

कलियुगके प्रभावसे यद्यपि आजके युगमें सर्वत्र छल-प्रपंच, बेईमानी, मिथ्यावादिता और अराजकताका राज्य है, तथापि आज भी संसारमें अनेक ईमानदार व्यक्ति भी हैं। घटना डाल्टनगंज (बिहार)-की है। मैं २० जुलाई, सन् १९७८ ई० को सुबह प्राय: दस बजे जिला शिक्षापदाधिकारी, पलामूके कार्यालयमें प्रशिक्षण-संस्थानमें नामांकनकी तिथि ज्ञात करने गया था। ठीक उसी समय दो विद्यार्थी साइकिलद्वारा समीपवर्ती सड़कसे गुजर रहे थे। उनकी साइकिल ज्योंही जिला-न्यायालय पलामूकी ओर जानेवाली सड़कपर पहुँची, त्योंही उन्होंने साइकिल रोककर निकट सड़कपर पड़ी एक छोटी गठरीको उठाया। देखा तो उसमें बीस-बीस रुपयेके २० नोट थे। उनमेंसे एक जो स्थानीय राजकीय संस्कृत उच्च विद्यालयके एकादश वर्गका छात्र था, बोला—'मित्र! यह पैसा जिसका होगा, उसका चित्त कितना व्याकुल हो रहा होगा।'

दूसरे मित्रने उसकी भावनाको ससम्मान अपना समर्थन प्रदान किया। दोनोंने विचार किया कि जिसके ये पैसे हैं, उस व्यक्तिका पता लगाना चाहिये। यदि वह न मिले तो इन पैसोंको दीन-दुखियों, जरूरतमन्दोंमें वितरण कर देना चाहिये; क्योंकि दूसरेका द्रव्य मिट्टीके समान समझनेका उपदेश हमारी संस्कृतिमें है। दोनों मित्र इसी तरह संकल्प-विकल्प कर ही रहे थे कि लगभग चालीस वर्षकी एक अज्ञात महिला रोती हुई, रास्तेमें सबसे कहती-पूछती चली आ रही थी—'किसी भाईने अगर मेरी गठरी, जिसमें रुपये थे, पायी हो तो कृपा करके वापस दे दें। मेरा लड़का राँचीमें रहता है, उसके पास उन रुपयोंको भेजना है।'

उसकी करुण-वाणीको सुनकर दोनों मित्रोंका ध्यान आकृष्ट हुआ। वे लपककर उसके पास आये और बोले—'माताजी! आप चिन्ता न करें; आपके रुपये हमारे पास हैं, जिन्हें हमने अभी-अभी रास्तेपरसे उठाये हैं।' फिर उन्होंने उस महिलासे रूमालके रंग, बँधे हुए रुपयोंकी संख्या तथा उसमें कौन-कौन नोट कितने थे, आदि औपचारिक और आवश्यक पूछ-ताछकर तथा उसके उत्तरसे सन्तुष्ट हो, रुपये बँधे रूमालकी वह पोटली उसे वापस कर दी। द्रव्य-स्वामिनी अपने खोये हुए द्रव्यको पाकर प्रसन्न हो, उन बच्चोंको आशीर्वाद देकर कृतज्ञताभरे हृदयसे विदा हो गयी। समीप ही खड़े एक-दो व्यक्तियोंने उनकी सराहना की तो उन्होंने कहा कि धन्यवाद तो अपनी संस्कृतिको दीजिये, जिसने हमें यह सिखलाया है कि '**परद्रव्येषु लोष्टवत्**' (चाणक्य २।६)—पराये धनको मिट्टीके समान समझना चाहिये।

विद्यार्थियोंके इस विवेकको देखकर एवं उनकी शालीन वाणीको सुनकर मेरा हृदय उनके प्रति प्रेम और सम्मानकी भावनासे भर उठा। मैं सोचने लगा—'आज ऐसे बच्चोंसे ही भारतके उद्धारकी आशा है। इस देशकी गिरती हुई नैतिकताको उठानेमें हमें अपनी भावी पीढ़ी (नवयुवकों)-से बहुत आशाएँ हैं, जिसे कोई न कर सके, उसे युवाशक्ति करनेमें सर्वथा शक्य है, यदि उसे उचित शिक्षण, सत्परामर्श तथा सही दिशा-निर्देश प्राप्त होता रहे। विशेषतया हम बड़े अपने भावी पीढ़ीके समक्ष किसी भी ऐसे अनुचित कार्य या व्यवहारकी परम्परा न डालें, जिससे उनके कोमल हृदयपर कोई विपरीत प्रभाव पड़े। इस ओर पूरी सावधानी रखनेकी आवश्यकता है।—**हीरानन्द पाठक**

मनन करने योग्य

(१)

नम्र बनो, कठोर नहीं!

एक चीनी संत बहुत बूढ़े हो गये थे। जब उन्होंने देखा कि मेरा अन्तिम समय निकट आ गया है, तब अपने सभी भक्तों और शिष्योंको अपने पास बुलाया और प्रत्येकसे कहा—'तनिक मेरे मुँहके अन्दर तो देखो भाई! कितने दाँत शेष हैं?'

प्रत्येक शिष्यने मुँहके भीतर देखा। प्रत्येकने कहा—'दाँत तो कई वर्षपूर्व समाप्त हो चुके हैं महाराज! एक भी दाँत नहीं है।'

संतने कहा—'जिह्वा तो विद्यमान है?'

सबने कहा—'जी हाँ।'

संत बोले—'यह बात कैसे हुई? जिह्वा तो जन्मके समय भी विद्यमान थी। दाँत उससे बहुत पीछे आये। पीछे आनेवालेको पीछे जाना चाहिये था। ये दाँत पहले कैसे चले गये?'

शिष्योंने कहा—'हम तो इसका कारण नहीं समझ पाते महाराज!'

तब संतने धीमी आवाजमें कहा—'यही बतलानेके लिये तो मैंने तुम्हें बुलाया है। देखो, यह जिह्वा अबतक इसलिये विद्यमान है कि इसमें कठोरता नहीं है और ये दाँत पीछे आकर पहले इसलिये समाप्त हो गये कि ये बहुत कठोर थे। इन्हें अपनी कठोरतापर अभिमान था। यह कठोरता ही इनकी समाप्तिका कारण बनी। इसलिये मेरे बच्चो! यदि अधिक समयतक जीना चाहते हो तो नम्र बनो, कठोर नहीं!'

(२)

एक मुट्ठी अनाजपर भी अधिकार नहीं

एक बड़ा सुन्दर मकान है। उसके नीचे अनाजकी दूकान है। दूकानके सामने अनाजकी ढेरी लगी है। एक बकरा आया। उसने ढेरीपर मुँह मारा। दूकानका मालिक एक तरुण धनी दूकानपर बैठा था। उसके हाथमें नुकीली छड़ी थी। उसने बकरेके सिर-पर जोरसे छड़ी मार दी। बकरा में-में करता हुआ भागा।

श्रीनारदजी तथा श्रीअंगिराजी अपनी राह जा रहे थे। बकरेकी उपर्युक्त घटना देखकर नारदजीको हँसी आ गयी। अंगिराजीने इस हँसीका रहस्य पूछा। तब नारदजीने बताया कि 'यह अनाजकी दूकान पहले बहुत छोटी थी। इसके मालिकने इसी दूकानसे अपने व्यापारकी प्रतिष्ठा की। वह अन्तमें करोड़पति हो गया। उसीने यह इतनी बड़ी इमारत बनवायी। वह बहुत बड़े-बड़े व्यापार करने लगा, परंतु अनाजकी बुनियादी दूकानको अपने रहनेके मकानके नीचे ही रखा; क्योंकि इसी दूकानसे उसकी क्रमशः उन्नति हुई थी। मालिक मर गया। उसका बेटा उत्तराधिकारी हुआ। वही तरुण दूकानपर बैठा है, जिसने बकरेको छड़ीसे मारकर भगाया है। यह इस दूकानपर रोज घण्टेभर आकर बैठता है। कामकाज तो नौकर करते हैं। मुझे हँसी इस बातपर आ गयी कि दूकानका वह मालिक—इस तरुणका पिता ही बकरेकी योनिमें पैदा हुआ है। यही एक दिन इस दूकानका, मकानका और सारे कारोबारका मालिक था; पर आज एक मुट्ठी अनाजपर भी उसका अधिकार नहीं है। अनाजकी ओर मुँह करते ही मार पड़ती है और जिस पुत्रको बड़े प्यारसे पाला-पोसा, वही मारता है। यही है जगत्‌का स्वरूप।'

अपनेको सबसे छोटा समझना, अभिमान न करना, किसीका दोष न देखना, किसीसे घृणा न करना, कम बोलना, अनावश्यक न बोलना, सदा सत्य और मीठे वचन बोलना, यथासाध्य सबकी सेवा करना, दीनोंपर दया करना, विवाह-उत्सव आदि जनसमूहमें कम शामिल होना, पापोंसे सावधान रहना और ईश्वरपर पूर्ण विश्वास रखना—ये साधकके आवश्यक गुण हैं।—संत श्रीउड़ियाबाबाजी महाराज

नवीन प्रकाशन छपकर तैयार

गणेशस्तोत्ररत्नाकर (कोड 2024)—प्रस्तुत पुस्तकमें भगवान् गणेशके चुने हुए सुन्दर स्तोत्रोंका प्रकाशन किया गया है। भगवान् गणेशके भक्तों तथा अन्य लोगोंके लिये भी यह पुस्तक संग्रह तथा स्वाध्यायके योग्य है। मूल्य ₹३५

आदर्श सम्राट्, रंगीन (कोड 2022)—प्रस्तुत पुस्तकमें सम्राट् अशोक, सम्राट् समुद्रगुप्त, सम्राट् हर्षवर्धन, महाराणा प्रताप, शिवाजी आदि ३२ आदर्श राजाओंके जीवन-चरित्रका सुन्दर संग्रह है। मूल्य ₹२५

श्रीमद्भगवद्गीता (श्लोकार्थ-पाठ), पॉकेट साइज (कोड 2025)—इस पुस्तकमें पहले गीताके श्लोकका अर्थ और उसके बाद श्लोक दिये गये हैं, जिससे पाठक अर्थ समझते हुए गीताका पाठ कर सकें। मूल्य ₹ १५

जीवनचर्या-विज्ञान, गुजराती (कोड 2023)—प्रस्तुत पुस्तकमें वैज्ञानिक युक्तियोंके आधारपर वैदिक जीवनचर्या एवं दैनिक कर्मोंका सुन्दर विवेचन किया गया है। मूल्य ₹४०

मानस-पीयूष—अब सभी खण्ड उपलब्ध

कोड	खण्डोंका विवरण	मूल्य ₹
87	मानस-पीयूष (बालकाण्ड-खण्ड-१) बालकाण्डके प्रारम्भसे दोहा ४३ तक।	३००
88	मानस-पीयूष (बालकाण्ड-खण्ड-२) बालकाण्ड दोहा ४४ से दोहा १८८ तक।	३००
89	मानस-पीयूष (बालकाण्ड-खण्ड-३) बालकाण्ड दोहा १८९ से बालकाण्ड समाप्तितक।	३००
90	मानस-पीयूष (अयोध्याकाण्ड-खण्ड-४) सम्पूर्ण अयोध्याकाण्डकी विस्तृत व्याख्या।	३००
91	मानस-पीयूष (अरण्य, कि० काण्ड-खण्ड-५) दोनों काण्डोंकी विस्तृत व्याख्या एक जिल्दमें	३००
92	मानस-पीयूष (सुन्दरकाण्ड, लंकाकाण्ड-खण्ड-६) दोनों काण्डोंकी विस्तृत व्याख्या एक जिल्दमें	३००
93	मानस-पीयूष (उत्तरकाण्ड-खण्ड-७) सम्पूर्ण उत्तरकाण्डका विस्तृत विवेचन	३००
1935	मानस-पीयूष परिशिष्ट	७५

गीता-दैनन्दिनी—(सन् २०१५) के अब सभी संस्करण उपलब्ध [मँगवानेमें शीघ्रता करें]

(प्रकाशनका मुख्य उद्देश्य—नित्य गीता-पाठ एवं मनन करनेकी प्रेरणा देना।)

पूर्वकी भाँति सभी संस्करणोंमें सुन्दर बाइंडिंग तथा सम्पूर्ण गीताका मूल-पाठ, बहुरंगे उपासनायोग्य चित्र, प्रार्थना, कल्याणकारी लेख, वर्षभरके व्रत-त्योहार, विवाह-मुहूर्त, तिथि, वार, संक्षिप्त पञ्चाङ्ग, रूलदार पृष्ठ आदि।

		डाक खर्च अतिरिक्त
पुस्तकाकार—विशिष्ट संस्करण (कोड 1431)—गीता-मूल, हिन्दी-अनुवाद,	मूल्य ₹ ७०	₹ २५
,, ,, (बँगला अनुवाद (कोड 1489), ओड़िआ अनुवाद (कोड 1644), तेलुगु अनुवाद (कोड 1714)	मूल्य ₹ ७०	₹ २५
सुन्दर प्लास्टिक आवरण (कोड 503)—गीताके मूल श्लोक एवं सूक्तियाँ	मूल्य ₹ ५५	₹ २५
पॉकेट साइज— **प्लास्टिक आवरण** (कोड 506)— गीता-मूल श्लोक,	मूल्य ₹ ३०	₹ २०

व्यापारिक संस्थान नववर्षमें इसे उपहारस्वरूप वितरित कर गीता-प्रसारमें सहयोग दे सकते हैं।

[गीताप्रेसकी निजी थोक पुस्तक-दूकानोंसे थोक खरीदनेपर नियमानुसार डिस्काउण्ट भी उपलब्ध है। दूकानोंका पता कल्याण अक्टूबरके कवर पृष्ठ ३ पर देखें।]

प्र० ति० २०-१०-२०१४
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2014-2016
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2014-2016

ग्राहकोंसे आवश्यक निवेदन

जनवरी २०१५ का विशेषाङ्क **'सेवा-अङ्क'** दिसम्बर २०१४ में ही भेजनेका प्रयास है। **रजिस्ट्रीसे विशेषाङ्क प्राप्त करनेके लिये सदस्यताशुल्क यथाशीघ्र भेजें।**

गीताप्रेसकी दूकानोंपर भी सदस्यताशुल्क छपी रसीद प्राप्त करके जमा कर सकते हैं। जिन ग्राहकोंका सदस्यताशुल्क नवम्बरके अन्ततक प्राप्त नहीं होगा उन्हें बादमें वी०पी०पी०से विशेषाङ्क भेजा जायेगा।

वार्षिक-शुल्क—सजिल्द ₹ २२०, अजिल्द ₹ २००। पंचवर्षीय-शुल्क—सजिल्द ₹ ११००, अजिल्द ₹ १०००

इंटरनेटसे सदस्यता-शुल्क-भुगतानहेतु gitapress.org पर **Online Magazine Subscription** option को click करें।

व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय' पो०-गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५

पुनः छपकर तैयार—

धर्मशास्त्राङ्क (कोड 1132)—इसमें स्मृतियों एवं धर्मसूत्रोंका परिचय और सार-संक्षेपमें उनके मुख्य विषयोंका प्रतिपादन तथा इन विषयोंसे सम्बन्धित कुछ प्रेरणाप्रद आख्यानोंको प्रस्तुत किया गया है। मूल्य ₹१५०

जैमिनीकृत महाभारतमें भक्तोंकी गाथा (कोड 1771) पुस्तकाकार, सजिल्द—व्यासके प्रिय शिष्य महर्षि जैमिनिके द्वारा प्रणीत इस ग्रन्थमें भक्त सुधन्वा, मोरध्वज, ताम्रध्वज, चन्द्रहास आदिकी सरस कथाएँ हैं। भक्तोंकी माँगपर इसमें सम्पूर्ण आश्वमेधिक पर्वकी कथाओंको केवल हिन्दी भाषामें प्रकाशित किया गया है। मूल्य ₹९०

धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजीके महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ—मार्क्सवाद और रामराज्य (कोड 698) (सजिल्द)—प्रस्तुत पुस्तक मार्क्सवाद और रामराज्यके तुलनात्मक विवेचन, न्याय, वेदान्त, राजनीति और दर्शनके रूपमें मननीय ग्रन्थ है। इसमें पाश्चात्त्य दार्शनिकों, राजनीतिज्ञोंकी जीवनी आदि भी है। मूल्य ₹१५०

भक्तिसुधा (कोड 1982)—प्रस्तुत पुस्तकमें श्रीकृष्णकी बाललीला, वेणुगीत, चीरहरण, रासलीला, देवोपासना, भगवत्प्राप्ति आदि विषयोंकी विशद व्याख्या है। इसके अतिरिक्त नामरूपकी उपयोगिता, मानसी-आराधना, भगवत्कथामृत, वेदान्तरससार आदि विषयोंपर भी सुन्दर विवेचन है। मूल्य ₹२००

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५

अब गीताप्रेस वेबसाइटपर

गीताप्रेस गोरखपुरकी निम्न वेबसाइटपर निजी पठनके लिये मुफ्त डाउनलोडकी सुविधा।

१. **'कल्याण'** मासिक अङ्कोंके तथा विशेषाङ्कोंके चुने हुए लेख **kalyan-gitapress.org** पर।

२. अंग्रेजी **'कल्याण-कल्पतरु'** के मासिक अङ्क तथा प्रकाशित कुछ विशेषाङ्क—**kalyana-kalpataru.org** पर।

३. गीताप्रेससे प्रकाशित अंग्रेजी, हिन्दी, गुजराती, मराठी, तेलुगु आदि भारतीय भाषाओंकी कई महत्त्वपूर्ण पुस्तकें तथा कल्याण, **kalyana-kalpataru** का सदस्यताशुल्क भेजनेकी सुविधा एवं प्रकाशनोंकी सूची आदि **gitapress.org** पर।